अंक २]

॥ ओ३म् ॥

भक्ति

वर्ष ३]

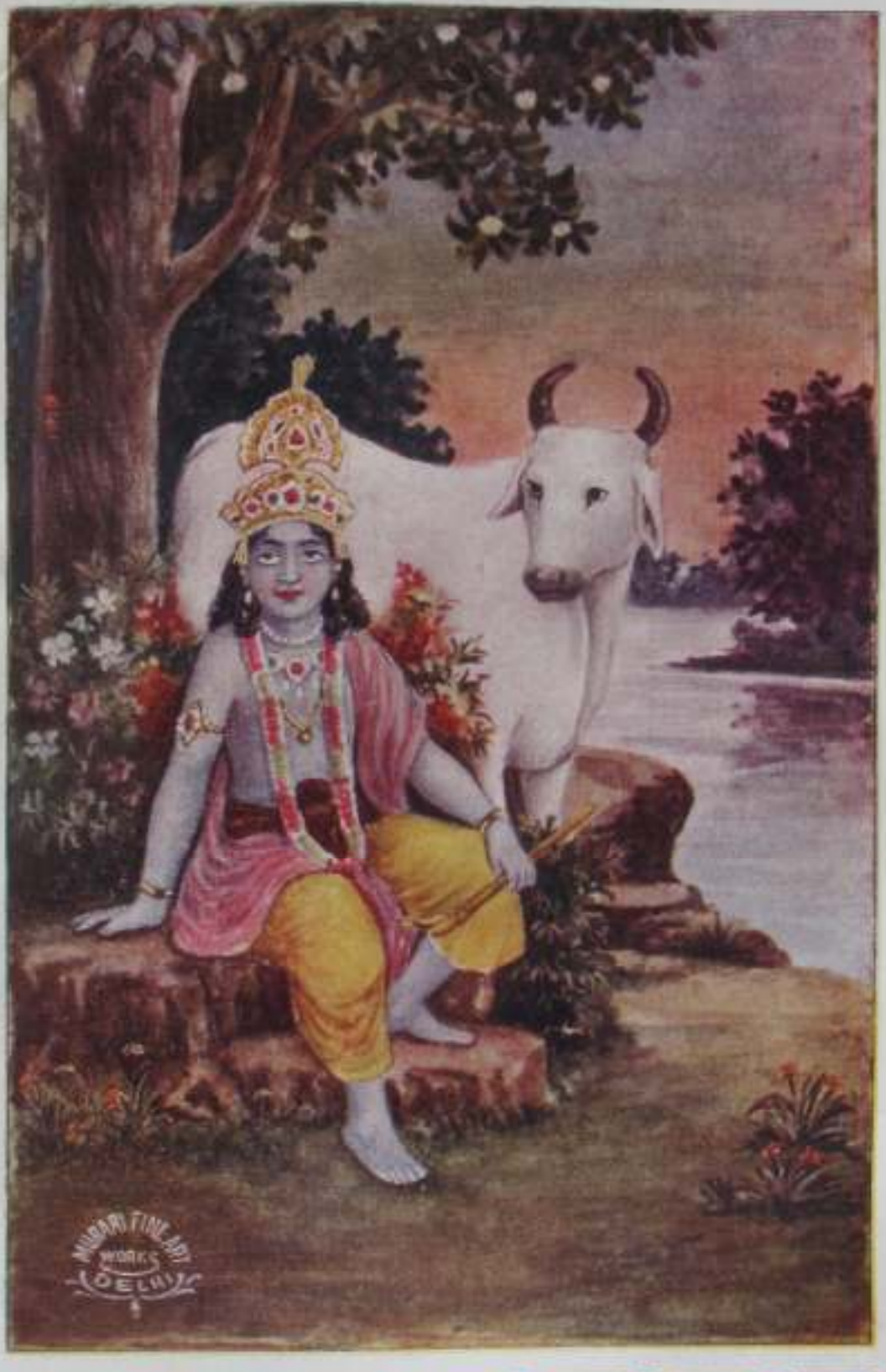

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सं०— कृष्णानन्द सरस्वती
भूमानन्द ब्रह्मचारी

कार्तिक पूर्णिमा
सं० १९८५

इस अङ्क का मूल्य ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, य बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार , ामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा ान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में क्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रका- हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके क और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१०५
श्रीकृष्ण चरित्र	१०७
लक्ष्मी पूजन [श्री० भोले बा ा अनूपशहर	१०९
श्याम प्यारे से खरी खरी बातें [एक जिज्ञासु	११७
भक्ति में शक्ति [श्री० आनन्दी प्रसाद जी मिश्र निर्द्वन्द्व	१२०
साकार या निराकार [पं० जयराम जी शर्मा "सनातन"	१२३
७. भक्ति महारानी [श्री० भोले बाबा अनूपशहर	१२७
८. विद्या (कविता) [श्री भोले बाबा अनूपशहर	१३४
९. भजन	१३५
१०. वेदसूर्योदयः कवित) [पं० मेधाव्रत जी शर्मा आचार्य	१३६

यदि आप को

बढ़िया, सस्ता और समय पर छपाई का काम कराना है तो

भक्ति प्रेस

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी में भेजिये।

हमारे यहां

हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी में सब प्रकार का काम छपता है। बुक वर्क के साथ साथ साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्र और जाबवर्क में बिलबुक, रसीदबुक, हुण्डी, कार्ड, लिफाफे बीजक, नकशे, लेटर पेपर और विजिटिंग कार्ड आदि सब प्रकार की दुरंगी, तिरंगी छपाई का काम बहुत सुन्दर, सस्ता और समय पर छाप कर दिया जाता है।

हाफटोन ब्लाकों की छपाई का भी खास प्रबन्ध है।

मैनेजर

"भक्ति प्रेस" श्रीभगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

श्री१०८ श्रीपरम पूज्य स्वामी परमानन्द जी महाराज ।

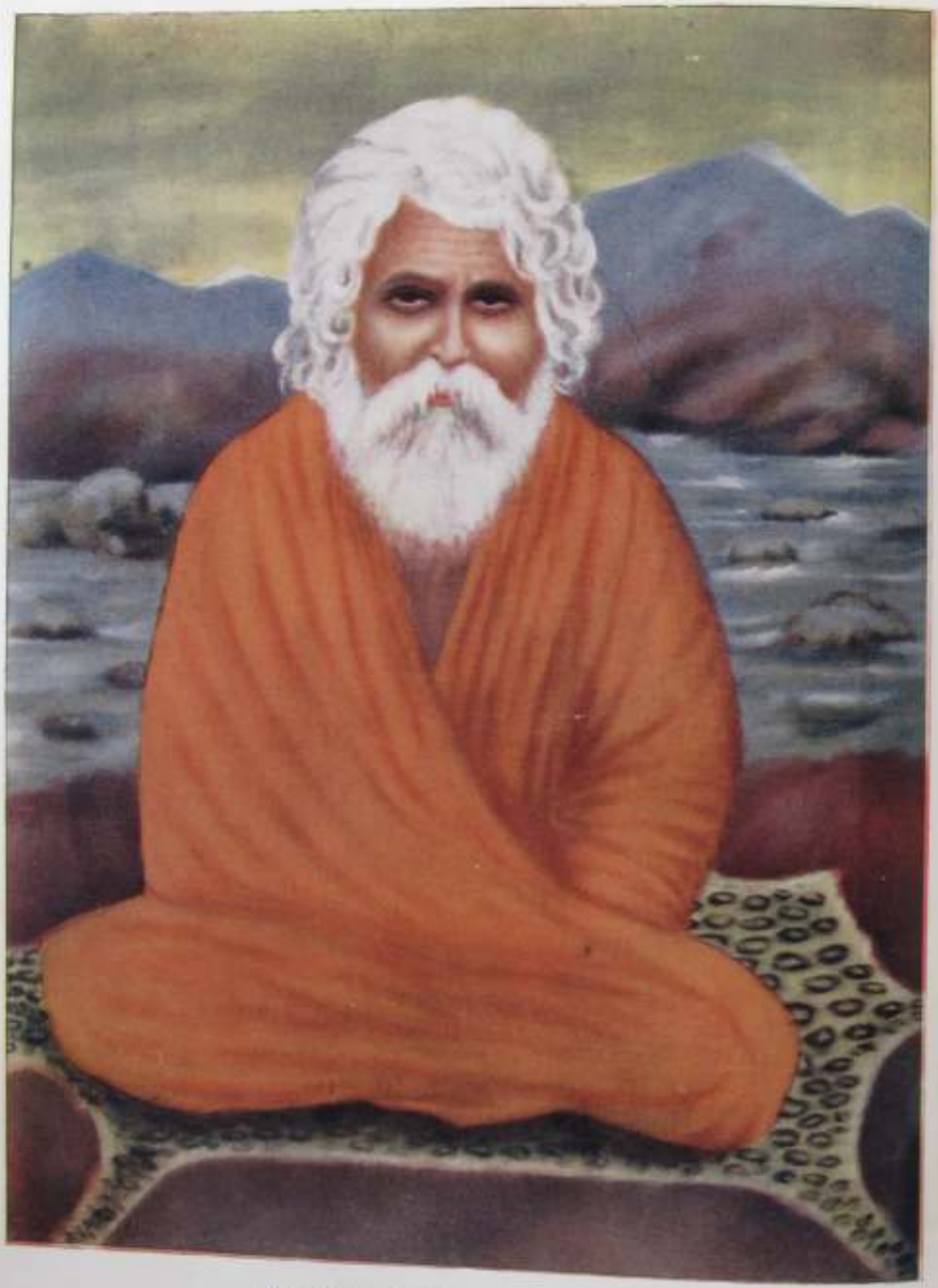

श्रीगुरु परमानन्दं वन्दे स्वानन्द विग्रहम् ।
यस्य सानिध्य मात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक पूर्णिमा सं० १९८५। | अङ्क २

मङ्गलाचरण।

गोपेन्द्रवंश वृषभानु महीपनाम, यस्यगृहे प्रकटकापि निकुंज देवी।
राधेति नाम फलवाञ्छित कल्पवृक्षो, तस्याम्बुजन्मयदरेणुमहं स्मरामि ॥१॥

गोपेन्द्र वंश में वृषभानु नाम के राजा हुए जिनके घरमें वांछित फल देने में कल्पवृक्ष के समान राधा नाम की देवी प्रकट हुई। उस श्रीराधाजी के चरणारविन्द की रज (धूली) का मैं स्मरण करता हूं ॥१॥

वेदैरशेषैरपि वेद्य एको वैद्योऽनवद्यो भवरोगभाजाम्।
श्रीविश्रमोऽनन्तशयोमदन्तर्दीव्यात्स देवः पुरुष पुराणः ॥२॥

सम्पूर्ण वेदों से जानने योग्य, अद्वितीय, संसार रूपी रोग से ग्रस्त प्राणियों के प्रशंसनीय चिकित्सक (वैद्य) लक्ष्मी के आश्रय, शेष-शायी, पुराण-पुरुष (परमात्मा) मेरे हृदय में प्रकाशित हों ॥ २ ॥

वन्दे नवघनश्यामं पीतकौशेय वाससम्।
सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥३॥

नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, पीताम्बर वस्त्र को धारण करने वाले, आनन्द युक्त सुन्दर शुद्ध स्वरूप, प्रकृति से पर ऐसे श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

श्रीराधे करुणापारे कोटिपूर्णेन्दु भानने ।
मंगलं कुरु मे नित्यं नन्दलालेन लालिते ॥४॥

हे अपार दया वाली ! हे कोटि पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति के समान मुख वाली ! हे कृष्णचन्द्र से लालिते ! हे श्रीराधे ! मेरा नित्य मंगल करो ॥ ४ ॥

नमामि राधाकृष्णौ नित्यं वृन्दावनेश्वरौ ।
भूमिभारहरार्थाय लीलामानुष विग्रहौ ॥५॥

वृन्दावन के ईश्वर, पृथिवी का नाश करने के लिये अपनी लीला से मनुष्य शरीर को धारण करने वाले, राधाकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतानन्त तेजसे ।
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ॥ ६॥

श्रेष्ठ व्रत और अनन्त तेज को धारण करने वाले हे भगवन् ! आपको नमस्कर है । हे क्षेत्राधिपति ! आपको नमस्कार है । हे बीज स्वरूप ! हे शूलिन ! आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥

नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय पूर्वाय प्रथमाय च ।
नमो मान्याय पूज्याय सद्यो जाताय वै नमः ॥ ७ ॥

ज्येष्ठ के लिये, श्रेष्ठ के लिये, पूर्व के लिये और प्रथम के लिये नमस्कार है। मान्य के लिये, पूज्य के लिए तथा सद्योजात के लिये नमस्कार है ॥ ७ ॥

नमस्ते अस्मदादीनां भूतानां प्रभवे नमः ।
वेदानां प्रभवे चैव स्मृतिनां प्रभवे नमः ॥ ८ ॥

हमारे से आदि लेकर भूतों की उत्पत्ति के कारण, तुम्हारे लिये नमस्कार है । वेदों की उत्पत्ति के तथा स्मृतियों की उत्पत्ति के करणभूत आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥

प्रभवे कर्मदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ।
नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः ॥ ९ ॥

कर्म, दान तथा द्रव्यों की उत्पत्ति के कारण भूत आपको नमस्कार है । योग और सांख्य की उत्पत्ति के कारण भूत आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥

वैद्युताशनि मेघानां गर्जितं प्रभवे नमः ।
नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्माधिपतये नमः ॥ १० ॥

बिजली, वज्र मेघ आदि के शब्द की उत्पत्ति के कारण भूत आपके लिये नमस्कार है। विश्व की उत्पत्ति के कारण भूत तथा ब्रह्म के अधिपति आपको नमस्कार है॥ १०॥

विद्यानां प्रभवे चैव विद्याधिपतये नमः।
नमो व्रताधिपतये व्रतानां प्रभवे नमः॥ ११॥

विद्या की उत्पत्ति के कारण भूत तथा विद्या के अधिपति ऐसे आपके लिए नमस्कार है। व्रतों के अधिपति भूत आपके लिए नमस्कार है॥ ११॥

श्रीकृष्ण चरित्र

द्वादशांक से आगे

एकबार नन्दजी प्रातः काल यमुनाजी में स्नान करनेके लिये गये। जब वह स्नान कररहे थे तब वरुण के एक दैत्य सेवक ने उनको पकड़ लिया और वरुण देवता के पास लेगये। जो गोप नन्दजी के साथ गये थे उन्होंने नन्दजी को न देख कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से कहा। भगवान् तुरन्त समझ गये कि वह काम वरुण के किसी दैत्य का है। तब वह वरुण के पास गये। वरुण ने भगवान् श्रीकृष्ण को आया देख कर उनकी पूजा की और कहा कि भगवन्! आज आपके दर्शन करने से मेरा जन्म सफल हुवा है। हे भगवन्! जो आपका भजन करते हैं वह इस संसार से पार होकर अचल मोक्ष पदवी को प्राप्त करते हैं। हे प्रभो! धर्म की महिमा को न जानने वाला मूढ मेरा अनुचर आपके पिता को ले आया है, अब आप यह अपराध क्षमा करें। भगवान् तथास्तु कह कर वहां से पिता के साथ व्रज में आगये। व्रज वासियों ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ऐसे अपूर्व गुण देख कर बहुत ही आनन्द माना। व्रज बालायें तो तब से श्रीकृष्णचन्द्र को साक्षात् भगवान् ही समझने लग गईं। उनकी भगवान् में ऐसी भक्ति होगई थी कि महर्षि शांडिल्य जी को भक्ति के सूत्र बनाते समय और कोई भक्ति विषयक जब उपयुक्त उदाहरण ही न मिला तो उन्होंने तो यह ही कह दिया कि "यथा व्रजगोपिकानाम्"।

सुदर्शनोद्धार।

एकबार सब व्रजवासी देवी की यात्रा के लिये गाड़ी आदि जोड़ कर देवी के बन में गये, वहां पहुंच कर सबने सरस्वती नदी में स्नान किया पश्चात् अम्बिका देवी का पूजन किया और नाना प्रकार के

आनन्द मंगल करते हुवे उस रात को उसी वन में रहने का विचार किया। दैव योग से उस वन में कोई महासर्प रहता था। उसने अकस्मात् आकर नन्दराय जी को डस कर निगलना चाहा तो नन्दराय जी पुकारने लगे। नन्दजी के आर्त्तनाद को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण दौड़े हुवे वहां आये और उस महा-सर्प के अपने चरण की ठोकर मारी। ठोकर लगते ही सर्प ने अपनी सर्प देह त्याग कर सुन्दर रूप धारण कर लिया। तब श्रीकृष्ण ने उससे पूछा कि तू कौन है? तुझे विवश होकर यह सर्प की योनि किस प्रकार मिली? तब सर्प ने कहा कि महाराज! मैं सुदर्शन नामक एक विख्यात गन्धर्व था। मैं सम्पत्ति और शरीर की सुन्दरता से गर्वित होकर विमान पर बैठ कर सब दिशाओं में विचरता था। एकबार मैंने रूप की सुन्दरता से गर्वित होकर अंगिरादि ऋषियों का उपहास किया। तब उनके शाप से मैं सर्प योनि को प्राप्त हो गया। आज आपके चरण प्रहार से मैं सर्प योनि से छूटा हूं। हे भगवन्! मैं आपकी शरण हूं। हे प्रभो! आपके नामोच्चारण मात्र से ही वक्ता और श्रोता दोनों पवित्र हो जाते हैं तब मेरे तो आपने चरण का प्रहार किया है इसलिये मैं तो अब सब पापों से मुक्त होगया हूं। इस प्रकार अनेक प्रकार से प्रार्थना करके वह सुदर्शन शाप से छूट गया और नन्दजी कष्ट से छूट गये।

शंखाचूड़ वध।

एकबार कृष्ण बलदेव दोनों भाई व्रज-वासियों के साथ रात में खेल कूद रहे थे। थोड़ी देर के पश्चात शंखाचूड़ नामक कुबेरका टहलुवा आया और श्रीकृष्ण बलदेव के देखते ही देखते वह शंखाचूड़ गोपियों को लेकर उत्तर की ओर चल दिया। तब दोनों भाई उस दैत्य के पीछे दौड़े। जब उस दैत्य ने दोनों भाइयों को अपने पीछे आता देखा तो प्राण बचाने के लिये वह गोपियों को छोड़ कर भागा। तब वह दैत्य जिस ओर जाता उस ही ओर भगवान् उस दैत्य को मारने के लिये उसके पीछे दौड़ते। थोड़ी ही देर में भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दैत्य को पकड़ कर एक मुष्टिक से ही उसे परम धाम को भेज दिया और उसके मस्तक में से अमूल्य मणि निकाल कर अपने भाई बलदेव को दे दी।

"भूमा"

सन्तन सहाय सदा शंख चक्र धारे गदा,
पद्म लिये हाथ प्रभु पूरण गोपाल जू।
भई हों निराश साथ रहा है न कोई मेरे,
पाउं परों नाथ हरि दीनन दयाल जू॥
पाऊं दुःख भारी हा मुरारी सुनो विनै मेरी
केशो गिरधारी लज्जा राखो नन्दलाल जू।
कहै मायाराम धाम त्याग श्याम दौर आये,
चीर तो बढ़ाये कहू पीरे कहूं लाल जू॥

वीत रागको संसार की तोड़ क्या,
तृणवत् जान्यो जगत् तो लाख किरोड़ क्या
चाह रज्जु सों बन्ध्यो तो फेर मरोड़ क्या
किंचा भ्रांति साथ विवाद तो फिर होड़ क्या

लक्ष्मी पूजन

स्वात्म श्रीयत्वसादेन वृद्धि याति दिने दिने ।
शीयतेऽनात्म दारिद्र्यं तं वन्दे कमलापतिम् ॥

छप्पय

इन्द्रिय मन स्वाधीन, दीनताहीन सयाने
केवल हरिपदनेह, स्नेह सम विषयन जाने
नहीं राग नहिं द्वेष, लेश काहू से करते।
सब से करते प्रीति, नीति पथ नाहीं टरते
लक्ष्मी पूजन है यही, विष्णु भक्ति भी है यही
भोला! यहही ध्यान है, यही ज्ञान सांचासही

आत्माराम पंडित।

गंगा का सुहावना तट है, तट पर एक घना वृक्ष वट है। पास ही एक पक्का घाट है, घाट से वटकी तरफ मैदान सपाट है। कार्तिक का उत्तम मास है, घाट पर स्नान करने वालों का जमघट है, ठठ के ठठ स्त्री पुरुष स्नान कर रहे हैं। वट के नीचे टाट पर बैठे हुए एक बूढ़े पंडितजी कथा कह रहे हैं, बूढ़े हैं फिर भी दिव्य मूर्ति हैं, जवानों को मात मारते हैं, सिंह की सी कड़ाके की वाणी है, कड़ाके के साथ मधुर भी है, श्रोताओं के चित्त को आकर्षण करने वाली है। ऐसा प्रतीत होता है कि आकाश गंगा के किनारे देवर्षि नारद देवताओं को कथा सुना रहे हों। श्रोता स्नान कर करके आते हैं और कथा सुनते हैं, पण्डित जी कथा ही नहीं कहते हैं किन्तु शंका समाधान भी करते हैं, जो जिस के जी में आवे पूछ सकता है, किसी को बोलने की मनाई नहीं है, हां! एक से अधिक न बोले, इतना ही पंडित जी का नियम है, एक शिष्ट पुरुष नीचे का प्रश्न करता है,

शिष्टः-पंडित जी! सब स्त्री पुरुष अपना अभ्युदय और सुख चाहते हैं, अपनी २ बुद्धि अनुसार सब प्रयत्न भी करते हैं, कृपा करके यह बताइये कि मनुष्य को यह कैसे मालूम हो कि मैं अपना हितकर रहा हूं अथवा अहित कर रहा हूं यानी अभ्युदय और अधोपतन की क्या पहिचान है? दिवाली आ रही है, लक्ष्मीजी का पूजन सब ही करेंगे और अनादि काल से करते भी रहते हैं, फिर सब श्रीमान् क्यों नहीं है? बहुत कम श्रीमान् हैं, विशेष करके कंगाल ही हैं, इस का क्या कारण है?

पंडित जीः-भाई! सब के पास प्रत्येक का मन कसोटी मौजूद है, मन से सुख, अभ्युदय और अधोपतन का ज्ञान हो सकता है, मन में ही सुख, अभ्युदय और अधोपतन तीनों रहते हैं, अपने २ मन को सब जानते ही हैं, फिर पूछना निष्फल है। तेरे प्रश्न का उत्तर तेरे कथन में ही है, बुद्धि अनुसार प्रयत्न होता है और फल भी बुद्धि अनुसार ही होता

है, यह सब जानते हैं और तू भी जानता है। फिर भी तेरे प्रश्न से सब का हित होना संभव है इस लिये मैं उस का उत्तर देता हूं, सावधान होकर सुन एक बार यह ही प्रश्न इन्द्र ने लक्ष्मी जी से किया था, उन दोनों का संवाद मैं तुझे सुनाता हूं:-

इन्द्र लक्ष्मी सम्वाद सदाचार।

इन्द्रः-हे देवी ! सुख और अभ्युदय की इच्छा वाले मनुष्य और देवताओं को आप का पूजन किस प्रकार करना चाहिये ? आप कौनसे लक्षण वाले पुरुषों के यहां निवास करती हैं और किन को त्यागती हैं ?

लक्ष्मीः-हे इन्द्र ! जो पुरुष श्रद्धावान, जितेन्द्रिय, धीर, वीर गंभीर, उदार और सम स्वभाव वाले होते हैं उनको मैं प्राप्त होती हूं और जो पुरुष संशयात्मा, विषयासक्त, अज्ञानी, कायर, छछोरे, कृपण और विषम स्वभाव वाले होते हैं, उनको मैं त्यागती हूं, उन के पास कभी नहीं जाती, जो वेद, शास्त्र, गुरु, सन्त, महात्माओं के वचनों को मानते हैं, जो अपने वर्णाश्रम, कुल, जाति और धर्मकापालन करते हैं उन को मैं प्राप्त होती हूं। जो अपने बड़े बूढ़ों की आज्ञानुसार चलते हैं, जो अपने माता पिता का आदर सत्कार करते हैं, जो बड़े छोटों को प्यार करते हैं, उन के हित का उपाय सोचते हैं, उन को शुभ मार्ग में लगाते हैं, वे लोग मुझे प्राप्त करते हैं, जिस घर में बहू सास की आज्ञा में चलती है, लज्जा करती है, सास आदिके सामने पति अथवा बड़े बूढ़ों से बात चीत नहीं करती, जो सास बहू से प्रेम करती है, पुचकार कर घर का कार्य लेती है, लिखना पढ़ना, सीना पिरोना आदि सिखाती है, जहां दोरानी जेठानी में झगड़ा नहीं होता, जो बहू सास ससुर से अलग नहीं होती, उस घर में मैं निवास करती हूं। जिस घर में सब छोटे बड़े परस्पर प्रीति भाव से मिल जुल कर रहते हैं, सब की सम्मति लेकर कार्य करते हैं, छोटे बड़ों की आज्ञा में चलते हैं और बड़े छोटों को धर्म कर्म तथा यथा योग्य व्यवहार करने की शिक्षा देते हैं, उस घर में मैं सदा निवास करती हूं। जो रात्री के मध्य भाग में सोते हैं, सूर्य उदय से प्रथम उठते हैं, प्रातःकाल में उठकर स्नानादिक नित्य कर्म करके ईश्वर के भजन ध्यान में लगते हैं, उनके यहां मैं वास करती हूं। जो पुत्र पुत्री सवेरे ही उठ कर माता पिता आदि को प्रणाम करते हैं, जो बहू उठते ही सास आदि के चरण छूती है, जो परस्पर मीठी वाणी बोलते हैं, जो अपने पड़ोसी को अपने समान ही प्यार करते हैं, उन को मैं कभी नहीं त्यागती। जो स्त्री पुरुष कभी खाली नहीं बैठते, सदा काम में लगे रहते हैं, भजन, पूजन, शास्त्रावलोकन, अथवा घर का काम कुछ न कुछ करते ही रहते हैं, जो दूसरे के घर जाकर अथवा अपने घर पर बैठकर वृथा गप सप नहीं करते, जो भूल कर भी किसीकी निन्दा नहीं करते, उनके घर से मैं कभी नहीं जाती। हे इन्द्र ! जो स्त्रियां अपने घरको झाड़ बुहारी देकर, लीप पोत कर साफ रखती हैं बर्तन धो मांज कर शुद्ध रखती हैं, खाने पीने की चीजों को ढांक कर रखती हैं, वस्त्रादिक की संभाल करती रहती हैं, मैले वस्त्र नहीं पहनतीं, रोगी, बूढ़े, बच्चे गर्भिणी आदि सब को खिला कर पीछे आप भोजन करती हैं, उन के यहां मेरा सदा निवास रहता है। जो दूसरे का अभ्युदय देख कर उस से ईर्षा नहीं करते, जो दूसरे

के धनकी वृद्धि देख कर प्रसन्न होते हैं, जो दूसरे का पुण्य देख कर उस की प्रशंसा करते हैं, स्वयं भी पुण्य कर्म में प्रवृत्त होते हैं, उन के यहां मैं सदैव निवास करती हूं।

हे इन्द्र! जो ब्राह्मण वेदपाठी अपने धर्म कर्म में सावधान होता है, स्वयं कथा वार्ता किया करता है, दूसरे को सुनाया करता है, संतोषी होता है, लोभ वश कथा वार्ता नहीं सुनाता किन्तु अपना धर्म समझ कर सुनाता है, स्वयं शास्त्रानुसार वर्तता है, दूसरों को भी ऐसा ही उपदेश देता है, शम दमादि गुणों से संपन्न होता है, उसका घर सदा ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण रहता है, उस के संतोष धनकी सदा वृद्धि होती है, उसको मैं कभी नहीं त्यागती। जो क्षत्रिय शूर होता है, धर्म युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाता, अपनी प्रजा के लिये कूप तड़ागादि बनवाता है, ऊपर भूमि में अन्न की उपज होने के लिये यत्न करता है, दान पुण्य में प्रीति वाला होता है, पराया धन नहीं लूटता, पर स्त्री को माता अथवा बहिन समझता है, विद्यालय गोशाला आदि खोलता है, सब प्रजा को अपने वश में रखता है, चोर डाकू आदि का उपद्रव नहीं होने देता उस के राज्य की मैं रक्षा करती हूं, उसके देश में मैं सदा बसती हूं। जो वैश्य शुद्ध व्यवहार करता है, अधिक ब्याज नहीं लेता, कमती नहीं तोलता, दूध में पानी नहीं मिलाता, कपड़ा कमती नहीं नापता, लाल रंग में सफेद खांड और घी में चर्बी नहीं मिलाता, साधु ब्राह्मण अतिथि का सम्मान करता है, निष्कपट होता है, उसके घर में मैं सदा वास करती हूं। जो शूद्र तीनों वर्णों की सेवा अपना परम धर्म समझता है, मालिक का काम मन लगा कर करता है मालिक का धन नहीं चुराता, अपने काम से भी मालिक का काम करने में अधिक प्रीति करता है, उसको मैं कभी नहीं त्यागती। जो ब्रह्मचारी तन मन धन से गुरुकी सेवा करता है, अपना पाठ नियम पूर्वक पढता है, खेल कूद में मन नहीं लगाता, अष्ट मैथुन का त्याग करता है कुदृष्टि से से किसी को नहीं देखता, उसका वीर्य अखंड होता है, वह पाठ कभी नहीं भूलता, उसकी स्मृति दृढ़ होती है, और उसकी विद्या की सदा वृद्धि होती है। हे इन्द्र! जो गृहस्थ स्वस्त्री से ऋतुकाल में संतान उत्पत्ति के लिये ही संभोग करता है, अन्य काल में काम वश नहीं होता, उसकी संतान और धनकी सदा वृद्धि होती है। जो जितेन्द्रिय होते हैं, कानों से भगवत् चरित्र अथवा सत्शास्त्र सुनते हैं नेत्रों से चराचर जगत् का भगवत् रूप देखते हैं, किसी से राग द्वेष नहीं करते, कठिन कोमल स्पर्श, शीतोष्ण को समान जानते हैं, सुगंधित पदार्थों में विशेष प्रेम नहीं करते, शरीर पोषण मात्र के लिये भोजन करते हैं षट्रस के प्रेमी नहीं होते, दान में प्रीति रखते हैं, पात्र को दान देते हैं, कंगाल बांधवों की यथा सामर्थ्य सहायता करते हैं जुआ नहीं खेलते, वृथा नहीं घूमते, नशा नहीं करते, लेने की इच्छा नहीं करते, ऊंचा हाथ रखते हैं, न्याय की बात कहते हैं, कम बोलते हैं, जरूरत से ज्यादा नहीं बोलते, उनके यहां हे इन्द्र! मैं सदा वास करती हूं। जो धनके लोभ से झूठी गवाही नहीं देते, जो अपने झगड़े टंटे पांच भाई मिल कर तै कर लेते हैं, मुकदमा बाजी नहीं करते, ग्राम अथवा मोहल्ले वालों से बैर नहीं करते, ऐसे लोग मुझे प्राप्त करते हैं उनको मैं कभी नहीं त्यागती, जो बूढ़े पुरुष युवा स्त्री के साथ विवाह नहीं करते, जो विशेष करके एक विवाहिता स्त्री ही रखते हैं, जो

एक दो संतान होने पर स्त्री मर जाने पर फिर विवाह नहीं करते, एक दो संतान से ही संतुष्ट रहते हैं, उनके यहां मैं सदा वास करती हूं। जो स्त्री पतिव्रता होती है, पति की आज्ञानुसार वर्तती है, पति के सिवाय दूसरे का ध्यान तक नहीं करती, पति को स्नान करा के स्नान करती है, पति को भोजन कराके भोजन करती है, पति के सुख में अपना सुख समझती है, ऐसी स्त्री मुझे प्यारी है, उसको मैं कभी नहीं छोड़ती। जो विधवा स्त्री सुन्दर वस्त्राभूषण त्याग देती है, स्वादिष्ट भोजनों में रुची नहीं करती रात्रि को घर की किसी एकांत कोठरी में वास करती है, भूमि पर सोती है, विषय भोग का स्वप्न में भी ध्यान नहीं करती, एक परमेश्वर को ही अपना स्वामी, पिता माता आदि समझती है उसी का ध्यान किया करती है. उसी का नाम जपती है, सदा शुद्ध विचार रखती है, मनमें विकार आने नहीं देती, संसारी पदार्थों को नश्वर मान कर किसी में प्रीति नहीं करती, अपना घर छोड़ कर बाहर नहीं जाती विषयासक्त स्त्रियों का सहवास नहीं करती, उपवासादि किया करती है, संसार के भोग प्राप्त न होने से मन खिन्न नहीं करती, सदा प्रसन्न मन रहती है, सब झंझट से छुटा देने के कारण ईश्वर को धन्यवाद दिया करती है, ईश्वर से ही प्रेम करती है। ऐसी विधवा स्त्री मुझे बहुत ही प्यारी है। ईश्वर रूप से मैं सदा उसके हृदय में वास करती हूं, उसको कष्ट कभी होने नहीं देती, और शीघ्र ही संसार समुद्र से उसका उद्धार करती हूं। पदार्थों में सुख दुःख नहीं है, सुख दुःख मन में है, जो मन से मेरा ध्यान करती है, उसके मन में सुख दुःख आने नहीं पाते, मन में सुख दुःख न आने से मैं अखंड सुख स्वरूप उसके हृदय में से कभी नहीं जाती इसलिये उसको हर्ष शोक कभी नहीं होता, हर्ष शोक ही संसार है, हर्ष शोक न होने से उसको दुःख कभी नहीं होता, वह सदा ही सुखी रहती है, दुःख उसके पास नहीं फटकता। विषयों का ध्यान करने से विषयों की इच्छा होती है इच्छा सब दुःखों की मूल है। जो मेरा ध्यान करती है उसको विषयों का ध्यान नहीं आता, ध्यान न आने से इच्छा नहीं होती, इच्छा न होने से किसी प्रकार का अनर्थ नहीं होता इसलिये ईश्वर का ध्यान करने वाली को तीनों काल में भी दुःख का संभव नहीं है, मैं सुख रूप उसे सदा प्राप्त ही हूं।

हे इन्द्र! जो परस्पर वैर करते हैं, जिस घर में कलह रहता है, जहां बहू सास का अनादर करती हैं, जहां सास बहू को प्यार नहीं करती उस घर को मैं त्याग देती हूं। जो ब्राह्मण मूर्ख होता है, लोभी होता है, अपना धर्म कर्म न करता हुआ भी दूसरों के यहां भोजन करता है धन के लालच से कथा कहता है, स्वयं शास्त्रानुसार नहीं वर्तता, मात्र दूसरों को ही उपदेश देता है, उसके यहां मैं कभी नहीं जाती। जो एक से अधिक निमंत्रण मानता है, निमंत्रण में जाकर अधिक भोजन कर लेता है, घर पर आकर गायत्री आदि नहीं जपता है, उस ब्राह्मण को मैं त्याग देती हूं। जो क्षत्रिय बिना प्रयोजन ही दूसरों का राज्य धन अथवा जमीन छीनना चाहता है। युद्ध में से पीठ दिखा कर भागता है उस क्षत्रिय को मैं त्याग देती हूं। जो वैश्य अधिक ब्याज खाता है, कमती तोलता है, छोटे गज से नापता है अच्छी चीज दिखा कर खराब चीज दे देता है सवाये से अधिक नफा लेता है घी आदि में मिलावट करता है कपट का व्यवहार करता है, उस वैश्य के यहां मैं नहीं

ठहरती, चोर, जुवारी, चौसर, गंजफा, सतरंजादि, खेलने वाले, व्यभिचार करने वाले, इन सबसे मैं दूर रहती हूं हे इन्द्र ! कामी, क्रोधी, लोभी, इन तीनों को मैं त्याग देती हूं। जो खाली बैठे रहते हैं, कुछ काम नहीं करते, आलसी होते हैं, वृथा गप सप करते रहते हैं, सूर्य निकलने तक सोते रहते हैं, नशा करते हैं, अभक्ष्य भोजन करते हैं, झूंठ बोलते हैं, दूसरों की धरोहर मार लेते हैं, ईश्वर से नहीं डरते, गुरु शास्त्र को नहीं मानते, अपनी मनमानी करते हैं, वेद शास्त्र पुराणों की निन्दा करते हैं, इन सबका मैं सर्वथा त्याग करती हूं।

हे इन्द्र ! ऊपर मेरे सकाम पूजन करने वालों का दर्शन किया, अब निष्काम पूजन करने वालों का वृत्तांत सुनः- श्रद्धा, धृति, आशा, शांति, विजित, सन्नति, क्षमा और वृत्ति ये मेरे आठ नाम हैं, इनमें वृत्ति मुख्य है, ये आठों नाम साधन रूप हैं और नवां मेरा नाम ज्ञप्ति है, ज्ञप्ति को जया भी कहते हैं, यह मेरा नाम सिद्ध रूप है यानी इसी की प्राप्ति के लिये ऊपर के आठनाम साधन हैं। इन नामों द्वारा मेरी उपासना की जाती है। गुरु शास्त्रमें श्रद्धा किये बिना मेरी प्राप्ति नहीं होती इसलिये मेरा नामश्रद्धा है, जो पुरुष धीर नहीं होता, विषयों को देखकर अधीर हो जाता है वह मुझे प्राप्त नहीं कर सक्ता, धृति वाला धीर पुरुष मुझे प्राप्त करने का अधिकारी है, इसलिये मुझे वेद वेत्ता धृति कहते हैं। जो सबकी आशा छोड़ कर केवल मेरी ही आशा रखता है, और सब दिशाओं में मुझे पूर्ण जानता है, वहही मेरा उपासक होता है इसलिये मुझे आशा कहते हैं। शीतोष्ण को सहन करने वाले मुझे प्राप्त होते हैं इसलिये मेरा नाम शांति है। काम क्रोधादि सबका जय करने से मैं प्राप्त होती हूं, इसलिये मैं विजिति कहलाती हूं। सत् मात्र के लिये झुकाने वाला ही मुझे प्राप्त होता है इसलिये मुझे सन्नति कहते हैं। दूसरे के अपराध को क्षमा करना, यह मेरी प्राप्ति का उपाय है इसलिये मैं क्षमा कहलाती हूं। वृत्ति मेरी प्राप्ति का मुख्य उपाय है। जैसे वृत्ति ब्रह्मांड का विषय करती है ऐसे ही मुझे विषय करने वाली भी वृत्ति ही है इसलिये मुझे वृत्ति कहते हैं, ऊपर कहे हुये सातों साधन संपन्न वृत्ति द्वारा मुझ ज्ञप्ति रूप का साक्षात्कार करते हैं। ज्ञप्ति रूप मेरा और ब्रह्म का अभेद है, इसी को विष्णु धाम कहते हैं। जो आठों साधनों से मुझ ज्ञप्ति रूप का साक्षात्कार करता है, वह अखंड सुख को प्राप्त होता है और फिर तीनों काल में मैं उसका त्याग नहीं करती, यह ही मेरा सर्वोत्तम पूजन है।

हे शिष्ट ! इस प्रकार लक्ष्मी से सुनकर इन्द्र सहित सब देवता धर्म निष्ठ हो, लक्ष्मी का पूजन करने लगे। ऐसा करने से उन्होंने दैत्यों पर जय प्राप्त किया। धर्म निष्ठ के यहां लक्ष्मी सदा निवास करती है। लक्ष्मी विष्णु भगवान् की शक्ति चार प्रकार की है। एक प्रसिद्ध इस लोक के स्त्री, पुत्र, पशु आदि भोग, दूसरे परलोक में स्वर्गादि लोकों के दिव्य भोग, तीसरे अणिमादि सिद्धि और ब्रह्मलोक के उत्कृष्ट भोग। ये तीनों लौकिक भोग हैं, वास्तविक लक्ष्मी नहीं है। वास्तविक लक्ष्मी का विष्णु से अभेद है, विष्णु सदा एक रस अखंड सुख स्वरूप हैं, विद्वान् उन्हीं की इच्छा करते हैं। अपनी २ बुद्धि अनुसार सभी लक्ष्मी का पूजन करते हैं और प्राप्त करते हैं। जिसको जितना ज्ञान है, उसी के अनुसार उसको सुख की प्राप्ति है। विष्णु रूप ईश्वर सबके हृदय में विराजमान हैं, सबके हृदय को जानते हैं और यथा

योग्य फल देते हैं, किसी ने कहा भी है:-

सबके हृदय बैठके साहब मुजरा लेंय ।
जैसी जाकी चाकरी तैसो ताकुं देंय ॥

श्रीनगर के राजा के दो पुत्र थे। राजा के मरने के बाद बड़ा पुत्र गद्दी पर बैठा और छोटा पुत्र उस के भय से वेष बदल कर देश की यात्रा करने चल दिया। इसका नाम तोपपाल था। तोपपाल को मार्ग में तीन मनुष्य मिले, एक कृषिकार, दूसरा गवैया और तीसरा व्यापारी, तीनों राजकुमार के साथ हो लिये, चारों चलते २ लक्ष्मीपुर में पहुंचे, इस समय उनके पास खर्च कुछ नहीं रहा,, परस्पर कहने लगे कि सब अपना २ गुण वर्णन करें। कृषिकार बोला "मेहनत करने वाला भूखा नहीं मर सक्ता दो पैसे चाहे जहां से कमा ला सकता है। गवैया बोला। "भाई! गायन विद्या ऐसी वस्तु है कि सब को मुग्ध कर देती है, पत्थर को भी पिघला देती है. गवैया के लिये धन का टोटा नहीं रहता।" व्यापारी बोला "अजी! व्यापार से धन की वृद्धी होती है, व्यापार करने वाला एक दिन में हजारों रुपये कमा सकता है।" तोपपाल राजकुमार बोला "भाइयो! जो कुछ तुमने कहा, ठीक ही है, किन्तु सन्तोष उत्तम वस्तु है, सन्तोष से बढ़ कर कुछ नहीं है, कहाभी है:-

जब आवे संतोष धन,
सब धन धूर समान ।

जब तक ईश्वर की कृपा नहीं होती तब तक न तो मेहनत काम देती है, न गाना काम आता है, न व्यापार ही सहायता देता है हां! अपनी अपनी बुद्धि और सामर्थ्यानुसार मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये, सिद्धि असिद्धि ईश्वराधीन है। दाने २ पर छाप है. जो प्रारब्ध में लिखा है, अवश्य मिलेगा, संतोष का फल मीठा है, सन्तोष ही परम धन है। सन्तोषी के लिये कड़वा फल भी मीठा हो जाता है! संसारी सुख तो क्या, संतोष से अखंड सुख रूप ईश्वर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार बात चीत होने के पश्चात् कृषिकार भोजन की खोज में शहर की तरफ गया और लोगों से पूछने से उसे मालूम हुआ कि यहां लकड़ी बहुत तेज बिकती है, पास के जंगल में जाकर कृषिकार लकड़ियों का एक भारी गट्ठा ले आया और उसे दस रुपये को शहर में बेच कर खाने की सामग्री लेकर मित्रों के पास लौट आया और लौटते समय शहर के फाटक पर लिख आया कि यहां की एक दिन की कमाई दस रुपये है। दूसरे दिन गवैया शहर में गया और एक रईस के मकान के पास बैठ कर मधुर स्वर से गाने लगा। रईस और मोहल्ले के रहने वाले गाना सुन कर एकत्र होगए। गाना ताल स्वर सहित लोगों के मन को मुग्ध करने वाला था, रईस ने गाने से प्रसन्न होकर पचास रुपये गवैये को इनाम दिए और दो दो चार चार करके पचास रुपये और आगए। सौ रुपये लेकर गवैया खाने पीने का सामान खरीद कर लौट आया और फाटक पर लिख आया कि यहां की एक दिन की आमदनी सौ रुपये है। तीसरे दिन व्यापारी शहर की तरफ गया। नदी किनारे एक नाव माल से लदी हुई खड़ी थी। व्यापारी ने नाव के माल का ठेका ले लिया और छोटे २ व्यापारियों को फुटकर में सब माल बेच दिया। इस में उसे एक हजार रुपये का लाभ हुआ। वह भी खाने की वस्तुयें लेकर लौट आया और दरवाजे पर लिख आया कि यहां का एक दिन का मुनाफा हजार रुपये है, चौथे दिन व्यापारी बोला "कुंवर जी! हम सब अपना अपना

हुनर दिखला चुके, आज आप के संतोष की वारी है, देखें संतोष का क्या फल होता है ?" राजकुमार शहर में गया। दैवयोग से उस दिन वहां का राजा मर गया था। सब लोग उस की मृतक किया में लग रहे थे। राज कुमार महल में घुस गया और एक कोने में बैठ वहां का तमाशा देखने लगा। सब रो पीट रहे थे यह चुप चाप बैठा हुआ था, ऐसा देख कर ड्योढ़ीवान को सन्देह हुआ कि यह कोई विदेशी है सब मृतक को लेकर श्मशान चले गए, यह वहीं बैठा रहा। तब तो ड्योढ़ीवान को निश्चय होगया कि यह किसी राजा का दूत है, छुप कर यहां का भेद ले रहा है। ऐसा समझ कर ड्योढ़ीवान ने राजकुमार को पकड़ कर एक कोठड़ी में बन्द कर दिया, राजा के कोई पुत्र था नहीं, दूसरे दिन प्रधानादि मिलकर यह विचार करने लगे कि किस को गद्दी पर बैठाना चाहिए। इतने ही में ड्योढ़ीवान ने आकर कहा "प्रधान जी! जल्दी कीजिए, जिसको आप उचित समझें राजगद्दी पर बैठाइये, राजाके शत्रुओं के दूत घूम रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि कोई शहर पर चढ़ाई कर दे, मैंने एक दूत को पकड़ रक्खा है।" प्रधान ने राजकुमार को बुलवा कर देखा तो उसके मस्तक से राज्य का तेज चमकता था। प्रधान के पूछने पर राजकुमार ने अपना सब वृत्तांत सुनाया। दैवयोग से राजकुमार के पिता के शासन में रहे हुए कई मनुष्य वहां मौजूद थे। सब ने राजकुमार के वचनों की साक्षी दी और प्रधान सहित सब की सम्मति से राजकुमार गद्दी पर बैठा दिया गया। दो दिन तक राजकुमार को आया हुआ न देख कर उस के साथी विचार करने लगे। कृषिकार बोला "अजी तोपपाल का संतोष तो उन्हें भी ले बैठा, अभी तक आए ही नहीं, कहीं किसी ने पकड़ तो नहीं लिया ?" गवैया बोला " भाई! हुनर बड़ी चीज है, बिना हुनर के आदमी किसी काम का नहीं व्यापारी बोला नहीं संतोष भी उत्तम वस्तु है, आज कुछ न कुछ राजकुमार की खबर सुनने में आवेगी।" इतने ही में सुनने में आया कि आज राजा सफेद हाथी की सवारी में बैठ कर शहर की परिक्रमा कर रहे हैं, सब देखने दौड़े। क्या देखते हैं कि राजकुमार ही सफेद हाथी पर बैठा हुआ है, जब सवारी फाटक के पास आई तो राजकुमार ने मित्रों का लिखा हुआ देख कर उसके नीचे लिखवाया कि मेहनत, गाना, और व्यापार भी तभी काम देते हैं, जब ईश्वर की कृपा भी हो, बिना ईश्वर कृपा कोई हुनर काम नहीं देता, सन्तोष की एक दिन की कीमत लक्ष्मीपुर का समस्त राज्य है, राजकुमार सब मित्रों को अपने साथ राज्य भवन में लेगया, वहां जाकर सब को यथायोग्य अधिकार पर नियत किया और सब प्रजा के सन्मुख कहने लगा "राज्य अथवा ऐश्वर्य ईश्वर कृपा बिना कुछ नहीं मिलता, जिसको राज्य अथवा ऐश्वर्य की इच्छा हो, उसे ईश्वर की आराधना करनी चाहिये। ईश्वर भक्ति ही समस्त फलकी देने वाली है।

हे शिष्य! सारांश यह है कि ईश्वर कृपा बिना कुछ नहीं मिलता। ईश्वर कृपा मनुष्य के कर्म के आधीन है, इसलिये मनुष्य को यथा सामर्थ्य प्रयत्न करना चाहिये और फल की प्राप्ति अप्राप्ति ईश्वराधीन समझ कर संतुष्ट रहना चाहिये। यह ही मुख्य लक्ष्मी पूजन है। कृषिकार शास्त्र संस्कार रहित पुरुष है, जो केवल इसी लोक को सत्य मानता है। और यहां के भोगों की प्राप्ति से ही अपने को कृत कृत्य

मानता है। गवैया शास्त्र संस्कार वाला कर्मी पुरुष है, जो स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति के लिये काम्य कर्म करता है और उन्हीं को अपना मुख्य कर्तव्य मानता है। व्यापारी सकाम उपासक है, जो अपने इष्ट देव की उपासना, इष्ट देव के ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये करता है। चौथा निष्काम मुमुक्षु भक्त है, जो निष्काम ईश्वर की आराधना करता है और यहां के पदार्थों की प्राप्ति अप्राप्ति में समान रहता है। यह भक्त अंत में कैवल्य साम्राज्य को प्राप्त करता है मुख्य लक्ष्मी पूजन यह ही है। सब प्रकार का ऐश्वर्य और कैवल्य स्वाराज्य की प्राप्ति इसी लक्ष्मी पूजन के आधीन है, इस लक्ष्मी को वेद वेत्ता स्वात्मश्री कहते हैं।

इतना कह कर पंडितजी ने कथा समाप्त करदी है, शिष्ट पुरुष ने एक हजार रुपये की थैली पंडितजी को भेंट की है, पंडित जी हंसकर कहते हैं।

पंडित जी:-भाई! इसको तो तू अपने पास ही रख, अथवा किसी विद्यालय, गौशाला अथवा अनाथालय में दे दीजो, वहां इसकी बहुत जरूरत है, मुझ में इसके पचाने का सामर्थ्य नहीं है, घर तक ले जाना ही कठिन होगा, कोई मार्ग में ही छीन ले जायगा, घर पहुंच गया तो लड़के वाले, भाई बंधु ले लेंगे, उन्हें न देकर घर में गाड़ूंगा तो चोर डाकू आकर ले जायंगे, मेरी भी ठुकाई कर जायंगे, ब्राह्मण की औकात तो चुटकी आटे की है, थैली तो सेठ साहूकार ही पचा सक्ते हैं, उनका स्वाभाविक कर्म भी है, कलियुग का वास भी इसी में है, मुझे क्षमा कर, इस लक्ष्मी से तू ही श्रीमान् कहला।

शिष्ट-लज्जित होकर निमंत्रण के लिये आग्रह कर रहा है, उसके बहुत आग्रह करने से पंडित जी ने आजका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, सब श्रोता उठ २ कर मार्ग में पंडित जी की प्रशंसा करते हुये जा रहे हैं।

एक:-भाई! आज की कथा में तो अमृत की वर्षा हुई! दूसरा:-भाई अब मैं किसी से बैर नहीं करूंगा। तीसरा:-आज, मैं अपने मुकद्दमे का राजीनामा कर लूंगा। चौथा:-अब कमती कभी नहीं तोलूंगा, सच्चा व्यवहार किया करूंगा! पांचवां:-सब मोहल्ले वालों से मेल रक्खा करूंगा छठा:-घर में लाकर, सबको बांट कर चीज खाया करूंगा, बाजार में अकेला २ कभी नहीं खाऊंगा! सातवां:-अब खाली कभी नहीं बैठा करूंगा! ताश भी नहीं खेला करूंगा! लक्ष्मी नाम की एक विधवा स्त्री विचारती जा रही है: ओ हो मैं कैसी मूर्ख हूं, चार वर्ष मुझे विधवा हुये हो गये, रोज कुढ़ २ कर मरी जा रही हूं, दूसरों को खाते, पहनते, देखकर कुढ़ा करती हूं, ईश्वर को गालियां दिया करती हूं, यह नहीं जानती कि ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है, अथवा जो कुछ होता है, हमारे पुण्य पाप से होता है, ईश्वर का उसमें क्या दोष? किया है सो आगे आया है! दिया है सो पाया है! पाना न पाना भी सब मन का माना हुआ है, मन चंगा तो कठौती में गंगा! अब मैं कभी खिन्न नहीं हुआ करूंगी, विषय भोग का ध्यान ही नहीं करूंगी, ध्यान करने से इच्छा होती है, इच्छा पूरी न होने से दुःख होता है, ध्यान न करो तो न कुछ लेना न देना। अब एकांत में भूमि पर सोया करूंगी, सादा भोजन खाया करूंगी, सादा पहिन कर ईश्वर का नाम जपा करूंगी, विषयासक्त स्त्रियों का संग कभी नहीं करूंगी, सुख दुःख सब मन का माना हुआ है, मन को नित्य के स्वामी परमेश्वर में लगाऊंगी, भोग छूट

भंगुर हैं, उनका मन से भी चिंतवन नहीं करूंगी। ईश्वर भजन ही सार है, ईश्वर के भजन के लिये ही मेरा जन्म हुआ है तभी तो सब झंझट से भगवान् ने मुझे छुड़ा दिया है, अब भी यदि ईश्वर भजन न करूं तो मेरे समान कौन मूढ होगी, इन पंडित जी को भगवान् ने भेज कर मुझे उपदेश दिया है, भगवान् का मेरे ऊपर परम अनुग्रह है, इस प्रकार विचारती हुई लक्ष्मी घर पर आकर ईश्वर भजन में लग गई और अंत में पंडित जी के उपदेश से लक्ष्मी परम शांति को प्राप्त हुई।

दोः पढ़ें सुनें जे नारि नर, पद्मा इन्द्रसंवाद
अचल शांति भोला लहें, लक्ष्मी विष्णु प्रसाद

श्रीभोले बाबा अनूपशहर।

श्याम प्यारे से खरी २ बातें

[ले० एक जिज्ञासु]

प्राणनाथ! आइये, यह निठुराई कब तक! देह सूख सूख कर जीर्ण हो गई, इन्द्रियां सब शिथल हो चलीं, केश श्वेत हो गये! आनन्द कन्द! अब कब दर्शन होंगे. तड़फाना छोड़ दो, दीन की आह अच्छी नहीं। मेरे कर्म की ओर न देखिये अपनी ओर देख कर अपनाइये।

एक बात एकान्त में सुनलो जगदाधार।
तारे मेरे कर्म तो तेरा क्या उपकार॥

दीनबन्धु! क्या मैं दीन नहीं? क्या वृथा ही शास्त्र आपको दीनवत्सल और अशरण शरण कहते हैं? नन्दनन्दन? गीधराज ने कौनसा तप किया था जो उसका पिता समान सत्कार किया? क्या इसलिये कि उसने जगदम्बा को असुर से छुड़ाने में जान दी थी. राजीवलोचन! सुनो मेरी सुरत जो पाप से रमण करना चाहती है उसको आसुरी वृत्तियां हरण किये लेती हैं, इस युद्ध में तो मैं भी अधमरा हो गया हूं, फिर मेरी वेर इतनी देर क्यों? अच्छा यदि गीध ने आपके लिये युद्ध किया था तो स्वर्णमृग ने तो सीता माता को हरण करवाया था उसको निजधाम क्यों दिया? क्या अशुद्ध आचरण न होने से विसारा है? गोविन्द! गणका की याद तो करलो, अपवित्र कमाई और आहार के कारण घृणा है तो व्याध का आहार क्या शुद्ध था, नित्य डाके से अपना पेट भरता था और कुटुम्ब को पालता था! यदि संयम हीन समझ कर मुझसे विमुख हो तो हृषिकेश! इसमें मेरा क्या वश? आपने ही तो इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया और

हृदय में बैठ मदारी की भांति प्रेरक बन अपनी माया से मुझे नचाते हो मेरी क्या गम्य कि आपके विरुद्ध चल सकूं!

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः,
जानामि पापं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन,
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

सुनते हैं आपने शिला को चरण परस कर पाप से मुक्त किया। सांवरे गिरधारी! मेरा हृदय क्या पत्थर से कम है कि आपकी विरह में अब तक द्रवीभूत न हुआ? क्या देवकीनन्दन! यह ध्यान है कि नाम सच्चे दिल से नहीं लेता, तो बताइये तो सही अजामील से क्या सगाई थी जो झूठे से बेटेका नाम लेने पर मुक्त करदिया, कालनेमि ने दम्भ से आपके कार्य में हानि करनी चाही उसकी गति कौनसी नीतिसे की! पतितपावन! सोचिये तो इन सबने कोई एक २ पाप किया था मैं तो पापों का पुञ्ज हूं फिर विलम्ब केहि काज? आइये, आइये, मेरी बिगड़ी को सवारिये। माखन चखय्या! क्या इसलिये नहीं आते कि मुझ से कुछ सेवा न बनी, अच्छे पदार्थ भोग न लगाये, मोहन प्यारे! बतलाइये तो पूतना ने कौनसा अमृतपान कराया था! वासुदेव! आपकी शरणागत वत्सलता सुन कर सब देवताओं को भी भुला चुका अब आपके सिवाय किसका सहारा? विरह सहा नहीं जाता, आओ प्यारे! आओ, राधेवर! यह स्वभाव अच्छा नहीं! चाहने वालों को तड़पा तड़पा कर मारोगे तो इस चाह (कुएं) में कौन पड़ेगा। सुनो! दीन न होंगे तो दीनानाथ की जगह नाथ ही रह जाओगे! कीट कुण्डल की जगह कानों में मुन्द्रे कोई जोगी डाल देवेगा। त्रिलोकीनाथ! क्या मैं त्रिलोकी में नहीं? फिर मुझे बिसारोगे तो नाम को बट्टा न लगेगा। दीन न रहोगे तो बन्धु किस के कहलाओगे? क्या बन्धुहीन होना भाता है। इसलिये ध्यान रहे हम मिटगये तो आपका नाम भी मिट जावेगा। श्यामसुन्दर! बहुत तड़पा चुके।

कब को टेरत दीन ह्वै होत न श्याम सहाय
तुम ही लागी जगत गुरु, जगनायक जगवाय*

अपना बिरद संभालिये, आहा! वह आये, धन्य, धन्य, प्यारे घनश्याम! आज घबराहट क्या है। मुकट ढलक रहा है, पीताम्बर उड़ा जा रहा है, मुरली मनोहर! मुरली कहां गंवाई, दम चढ़ा जा रहा है, ऐ माखन चोर! क्या हुआ बताओ तो सही स्वामी! मेरी अट पटी बातों से तो खेद नहीं हुआ। बृजचन्द्र! पय्यां लागूं, मुझे क्षमा दो, अति आर्त, अति स्वार्थी, अति दीन और अति दुःखी हूं क्या यह विचार कर नहीं बोलते, हो? हैं! आपतो इधर उधर झांक रहे हैं। ऐ चित्तचोर! क्या किसी का चित चुरा कर भागे हो? डरो मत आओ, तुमको नयनों में जगह दूं, पलकों की चिक डालकर छुपादूं, वहां भी डर लगता है तो आओ मेरी हृदय गुफा में आबसो इससे ज्यादा अंधेरी कोठरी न मिलेगी कोई न ढूंढ पावेगा, बस फिर किसका डर! अजी! यह क्या आप तो लौट चले। मुस्करा कर बोले अभी आता हूं कुब्जा रमण! नहीं नहीं जाओ नहीं:-

क्या इनकार तेरा बचपन,
हीं से यह खू है।

---

*जगकी हवा।

वाइयदा किया किसी से,
खुश कर दिया किसी को ॥

मुझे कैसे भरोसा हो, ठहरो अभी तो नयन भर देख भी न पाये हैं। गोपीनाथ! क्या तड़पाने में मजा आता है? सुनो तो बांके बिहारी. खरी खरी बात सुनते जाओ, प्रभू! मैं अब समझा, आप तो लेने देने के हैं, मुझ से कुछ न सरा इसी वास्ते मुंह फेरे जाते हो, हे नृसिंह! आपने प्रह्लाद को उबारा तो क्या अहसान किया पिता को भेंट में लिया था? हे राघव! आपने विभीषण को राज्य दिया तो क्या अनुग्रह किया उसका सारा कुलभी नष्ट किया था? माधव! यदि मोर्ध्वज को निजधाम दिया तो कौन बड़ी बात की थी कोमल शरीर पर आरे भी तुमने ही चलाए थे? हे द्वारिकानाथ! भक्त सुदामासे भी तो तण्डुल भेंट लेकर ही सम्पदा दी थी। यशोदानन्द! गोपियों के सामने नाच नाच कर रिझाया तो क्या हुआ, दूध दही भी उन्हीं से छुटा करते थे? हम तो जब जानें जो बिना भक्ति तारो। लो प्यारे अच्छा लो, मैं भी आपको जन्म जन्मान्तर के भोग से सञ्चित पापों की पुष्पाञ्जलि समर्पण करता हूं। अब तो आओ अवाय कर दर्शन तो करलूं। धन्य है लौटे हैं। यह श्याम घटा में बिजली की सी छटा कैसी? आहा यह तो श्री राधे को संग लारहे हैं। अहो धन्य भाग्य! हैं कमलनयन! क्षमा करना, व्याकुलता में मुख से कठोर शब्द बोला है। अनन्त! मुझे क्या पता था कि आज मेरे भाग्य का उदय होगा। आप श्रीजी को लाने चले हैं। राधारमण! आज कृतकृत्य हुआ। देव देवेश। चरणों को दूर क्यों हटाते हो? क्या मुझे नीच समझ कर! हे कृष्ण! क्या गीता में झूठी ही प्रतिज्ञा की थी? हरि! क्या रैदास और सदना को याद भूल गये, हे नारायण! क्या ज्ञान विहीन समझ कर घृणा करते हो? वाह, जी वाह, ध्रुव ने कौन से वेद पढ़े थे, गज ने क्या तत्वानुसन्धान किया था; शिवरी ने क्या गीता ज्ञान सीखा था? ज्ञान-स्वरूप! "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" की शर्त तो मोक्ष चाहने वालों से लगाना सुनिये:-

चहौं न सुगति सुमति सम्पति कछु,
ऋद्धि सिद्धि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग युगल छवि,
बढ़ौ दिन दिन अधिकाई॥
कुटिल कर्म लैजाए मोहि जहां,
तहां अपनी बरिआई।
तहां तहां जनि छिन छोड़ छांड़िये,
कमठ अन्ड की न्याई॥

और

जमना पुलिन कुञ्ज गहवर की,
कोकिल ह्वै दुरुम कूक मचाऊं।
पर पंकज प्रिय लाल मधुप हो,
मधुरे मधुरे गीत सुनाऊं॥
कूकर ह्वै वन वीथिन डोलों,
बचे सीथ सन्तन के खाऊं
ललित किशोरी आस यही मम,
ब्रजरज तज छिन अनत न जाऊं॥

आपने तो फिर मुंह फेर लिया। अच्छा महाराज जाओ. मय्या. मय्या! श्रीराधे! श्रीराधे! सहाय करो। मां! श्याम प्यारेने विरहमें जला २ कर मारडाला एक बर चाहता हूं, मय्या तुम इनसे रूठे

जाओ और जब तक मैं न कहूं इनको तड़पने दो, तड़पने का मजा यह भी तो चखें, मां . घायल की गति घायल ही जानते हैं, फिर तो कभी किसी को न तड़पावेंगे। पागलकी बड़ सुनकर श्यामाश्याम एक दूसरे की ओर निहार कर मुस्कराये ! मन्द मुस्कान से हृदय के सन्ताप दूर हुए, विरहाग्नि शान्त होगई, जन्म जन्मके पाप कट गये, चरणों में धुन लग गई, आखों की यमुना उमड़ी और मैं चरणों को गह कर आनन्द मग्न हो स्तुति करने लगा।

अबकी बेर हमारी लाज राखहु गिरधारी
जैसे लाज राखी अर्जुन की,
भारत युद्ध मंझारी।
सारथी बनकर रथ को हांक्यो,
चक्र सुदर्शन धारी।
भगत की पैज न टारी ॥अबकी०॥
जैसे लाज राखी द्रोपदी की,
होने न दीनी उघारी।
खींचत खींचत दोऊ भुज थाकी,
दुशासन पचहारी ॥
चीर बढायो मुरारी। अबकी० ॥
सूरदास की लाज राखो,
प्रभु अब को है रखवारी।
राधे ! राधे !! श्रीवर प्यारी,
श्रीवृषभानु दुलारी।
शरण तक आयो निहारी ॥ अबकी.

भक्ति में शक्ति

[ले० श्री० आनन्दीप्रसाद मिश्र "निर्द्वन्द्व"]

श्री गोविन्दसिंह जी बड़े भगवद्भक्त थे। उन के यहां आठों पहर चौंसठ घड़ी भगवत् चर्चा चला करती थी। यहां तक कि राज-काज करते समय भी यह चर्चा बन्द न होती थी। भक्ति के पावन पीयूष की एक दो बूंद उन के हृत्कमल को प्राप्त होगई थी, अतएव वे इस आनन्द को-इस महत्त्व को, भले प्रकार जानते थे।

उन के सौभाग्य से उनकी प्रजा पर भी यह रंग चढ़ा हुआ था। नित्य प्रातः राजा साहब अपनी प्रजा के साथ श्रीगीता जी पर चर्चायें किया करते थे और संध्या-समय जब राजा और प्रजा दोनों मिल कर श्रीगोपाल की मूर्ति के सामने भक्ति भाव से विह्वल होकर गाते थे :-

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥
शंख चक्र गदा पद्म कंठ माल होई ॥मेरे०

तब अर्जुन समय बन्ध जाता था। भक्तिदेवी सशरीर उपस्थित होजातीं थीं, आनन्द के फव्वारे छूटने लगते थे। चारों ओर ईश-ध्वनि से आकाश गूंज उठता था।

× × × ×

सायंकाल का समय था। राजा साहिब अपनी चित्रशाला में बैठे अपने इष्ट देवके भांति भांति के चारु चित्रों का अवलोकन कर पुलकित हो रहे थे। एक चित्र को उठा कर देखते और फिर आंखें बन्द कर कल्पना द्वारा उस चित्र का अवलोकनकर मुस्करा उठते, इस प्रकार उन्होंने अनेक चित्रों की बहार लूटी।

फिर उठकर दीवार में लटकते हुए एक चित्र के पास जा खड़े हुये। उन्होंने देखा कि शरद ऋतु की रात्रि में चन्द्रदेव अपनी पूर्ण कलाओं सहित नभ में स्थित हैं। नीचे कालिन्दी कूल पर श्याम सुन्दर अनेक व्रज बालाओं के साथ रास लीला कररहे हैं। कृष्ण ने अपने अनेक रूप धारण करलिए हैं। दो २ गोप बालाओं के मध्य में एक ही कृष्ण नाच रहे हैं चित्र के नीचे लिखा हुआ है "रास लीला"।

चित्र बहुत सुन्दर अंकित हुआ था। ऐसा ज्ञात होता था कि चारु चितेरे ने अपनी समस्त कला इस के बनाने में खर्च कर दी है।

राजा साहब ने दूसरा चित्र देखा। उन्होंने देखा कि रवितनया यमुना मदमाती युवती की भांति अठखेलियां करती हुई वहीं आ रही है। चन्द्र समस्त संसार पर अमृत वृष्टि कररहा है। बीचमें एकस्थान पर राधिका के साथ बैठे कृष्ण जल विहार कर रहे हैं। चित्र के नीचे अंकित है: "जल विहार"

राजा साहब तीसरे चित्र की ओर मुड़े। देखा संध्या होना ही चाहती है।। तरुलता, पुष्प सब शान्त हैं। जंगल में कदम्ब के वृक्ष के तले टेढ़े पैरों से खड़े होकर तथा नेत्रों की भृकुटी को कमान की भान्ति खींच कर मुरली-मनोहर थिरक २ बंसी बजा रहे हैं। चित्र के नीचे लिखा हुआ है। "वंशी-ध्वनि"

इस प्रकार एक के पश्चात् एक राजा साहब ने अनेकों चित्र देख डाले। फिर भी उन्हें सन्तोष न हुआ। आखिर वह सब चित्र ही थे, वे इन चित्रों में सजीव प्रतिमा के दर्शन किया चाहते थे, जो असम्भव था। अतएव वे निराश होकर बैठ गए।

थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने मन्त्री को बुलाकर आज्ञा दी कि:

"शहर के समस्त चित्रकारों को कल दरबार में उपस्थित होने के लिये मेरी आज्ञा सुनाओ।"

× × × ×

राजा साहब का दरबार लगा हुवा है। सामने कुछ चित्रकार खड़े हुये राजा साहब की आज्ञा की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजा साहब ने उन्हें सम्बोधन करके कहा:-

"चित्रकारो मैं भगवान श्रीकृष्ण का एक ऐसा चित्र चाहता हूँ, जो सर्वाङ्ग सुन्दर हो। जो चित्रकार चित्र में मुझे उनकी प्रत्यक्षता का भान करा देगा उसे मैं अपने गले में लटकती हुई बहुमूल्य मोतियों की माला से पुरस्कृत करूंगा। तुम सब को १५ दिन का समय दिया जाता है। सब को मेरे यहां रह कर ही चित्र तैयार करना पड़ेगा, रहने

के लिये सब को एक २ कमरा दिया जायगा।

चित्रकारों ने राजा साहब का अभिवादन किया और दूसरेही दिनसे भाग्य परीक्षा में जुटगए।

× × × ×

आज १५ वां दिन है। चित्रकार अपना २ चित्र लेकर दरबार में उपस्थित हुए। नियत समय पर राजा साहब भी दरबार में पधारे और चित्रकारों द्वारा प्रस्तुत चित्रों का निर्णय करने लगे।

उस समय चित्रकारों की दशा देखने योग्य थी, वे सब खड़े कल्पना कर रहे थे कि देखें, विजय लक्ष्मी किसे जयमाल पहिनाती है। इतने दिनों का परिश्रम व्यर्थ ही जाता है, या साथ में मोतियों की माला लाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि चित्रकारों ने अच्छा परिश्रम किया था, चित्रकारी का उन चित्रों में अच्छा दिग्दर्शन था, राजा साहब एक एक चित्रका अवलोकन करते जाते थे।

अन्तमें उन्होंने निराशासे सिर धुनकर दीवान कीतरफ देखा, दीवान ताड़गया कि चित्र राजा साहब के मन मुताबिक नहीं बने। उस ने डरते २ कहा:-

श्रीमन्! अभी एक चित्रकार अपना चित्र लेकर नहीं आया है, मैं उसे बुलाता हूं।

राजा साहब ने कहा:-नहीं, बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है, चलो हमहीं उसके पास चलते हैं। यह कहकर वह दीवान के साथ कमरे की ओर चले।

वहां जाकर देखा कि दर्वाजा बन्द है। मन्त्री ने अनेकों बार खड़खड़ाया, मगर कोई उत्तर न मिला।

राजा साहब ने दर्वाजा तोड़ने की आज्ञा दी, भीतर जाकर उन्होंने देखा कि चित्रकार ध्यानावस्थित दशा में बैठा हुआ है। उसके एक हाथ में ब्रुश है, तथा दूसरे में रंगदानी। सामने बोर्ड पर कोरा कागज़ लटका हुआ है। केवल नीचे की ओर दो चरणचिह्न अंकित हैं और 'मीरां' का निम्न लिखित पद लिखा हुआ है।

मनरे परसि हरिके चरण।
सुभग शीतल कमल कोमल,
त्रिविध ज्वाला हरण।
जिन चरण प्रह्लाद परसे,
इन्द्र पदवी धरण॥
जिन चरण ध्रुव अटल कीनो,
राखी अपनी शरण।
जिन चरण ब्रह्मांड भेट्यो,
नखशिख श्रीधरण।
जिन चरण प्रभु परसि लीनो,
तरी गोतम घरण।
जिन चरण काली ही नाथ्यो,
गोप लीला करण॥
जिन चरण गोवर्धन धार्यो,
गर्व मघवा हरण।
दासी मीरां लालगिरधर,
अगम तारण तरण॥

× × × ×

राजा साहब ने हाथ लगाकर चित्रकार को जगाया, वह हड़बड़ा कर उठ बैठा, और सामने हो राजा साहब को देख कर करुणापूर्ण स्वर में बोला:-

अन्नदाता क्षमा कीजिये, मैं चित्र न बना सकूंगा। जब से यह दो चरण चिह्न अंकित किये हैं, तब से आगे बढ़ने का होश ही नहीं रहा, यह चरण ही मेरे हृदयासन पर आ विराजे। इनसे तबीअत भर जाती, तब आगे चित्र बनाता, मैं तो इन चरणों पर ही मस्त होकर झूमने लगा हूं। यह कहते कहते उस के नेत्रों से प्रेमाश्रु टपकने लगे।

राजा साहब चौंक पड़े। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मानो उन्हें कहीं प्रकाश मिल गया है। उन्होंने कहा, ठीक है, जो चित्रकार चित्रके साथ अद्वैत भाव की स्थापना नहीं कर सकता, उस का चित्र केवल ब्रुश और रंग की करामात ही होगा। तुम्हारा यह चित्रही सर्व श्रेष्ठ है। अतएव, लो यह मोतियों की माला, तुम्हें ही पुरस्कार में दी जाती है।

× × × ×

चित्रकार ने धीरे २ उस माला को अपने गले से निकाल कर उन चित्र चरण चिह्नों पर लटका दिया और आप बाहर जाने लगा।

राजा ने कहा:- कहां जाते हो ?

चित्रकार ने उत्तर दिया:-उसे तलाश करने, जिस के चित्रित चरण-चिह्नों में इतनी दिव्यता है, इतनी पवित्रता है, इतनी निर्मलता है, न मालूम वह आपतो कितना सुन्दर होगा, कितना दिव्य होगा ? यदि कभी सौभाग्य वश उस से भेंट होगई, तो उस के समस्त शरीर को अपने हृदयासन पर बैठाऊंगा। यह कह कर वह बिजन-वन की ओर चल पड़ा।

× × × ×

राजा ने पीछे से "ठहरो ठहरो" कहा, पर वायु में उत्पन्न होकर यह ध्वनि वायु में विलीन होगई।

साकार या निराकार।

[ले० पं० जयराम शर्मा "सनातन"]

जगत् की सुन्दर रचना हरे हरे वृक्ष घास, बेल बूटे, फूलों के पौदे, मैदान, दरिया पाहड़ जंगल के प्राकृतिक दृश्य देखकर कौन ऐसा होगा जिसको इस सृष्टि के पैदा करने वाले परमात्मा की याद न आती हो, चित्रमय जगत्, दुनियाकी कारीगरीको देखकर उसकी अनन्त शक्तिपर मन मुग्धहो जाता है प्रेमकी लहर दिलमें उठती है. और जी में आता है कि जिसकी शक्तिसे सब ब्रह्माण्ड अपना कार्य नियमित रूपसे कररहा है, जिसका शासन जड़ चेतन सृष्टि के ऊपर है, उसको एकबार तो मन भरकर देख लूं,

वही इस अनन्त सृष्टिका कर्ता है वही इसको धारण किये हुए है, वही इसको अन्त करने वाला है, जलचर, थलचर नभचर जंगम जीवों में प्राण डाल कर लीला करने वाला वही है, सर्व व्यापक है, अनन्त है, अपार है, सच्चिदानन्द स्वरूप है उसकी सत्ता को मानने वाले प्रत्येक प्राणी के दिल में आता है कि एकबार तो उसके दर्शन करूं, उसके दर्शन करके आत्मा की प्यास को बुझाऊं जीवात्मा उस आनन्द सिंधु से बिछुड़ा हुवा है, जब तक उससे मिलाप नहीं, तब तक शान्ति कहां आनन्द कहां, सुख कहां ?

परन्तु "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः" से दिल बैठ जाता है, उसको इन्द्रियां पहुंच नहीं सकतीं, छू नहीं सकतीं, चख नहीं सकतीं, देख नहीं सकतीं, बुद्धि जिसका विचार नहीं कर सकती, जो गम्य है, अगोचर है उसका अनुभव कहां ? वह दूर से दूर है पास से पास है, पर पास होने से क्या, जब तक उसके दर्शन नहीं। ऐसे २ विचारोंसे व्याकुल होना स्वभाविक है, पर वह सर्वज्ञ है, दयालु है वह हमारी मुश्किलों को भलि प्रकार जानता है और कहता है।

निर्मान मोहा जितसंगदोषा,
अध्यात्म नित्या विनिवृत्त कामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःख संज्ञै,
गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

मान और मोह से रहित, संगादि दोषों को जीत कर काम से भी निवृत्त, अध्यात्म चर्चा में दिन रात लगे हुए, सुख दुःख द्वंद्व से मुक्त होकर धीर विवेकी योगी, उस पद को प्राप्ति करते हैं "अध्यात्म नित्या" पर प्यारे पाठको ! एक बात याद आ गई, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के सद्गुरु महर्षि वशिष्ठ नित्य प्रति सत्संग में जाया करते थे, एक दिन अरुंधती जी ने पूछा स्वामिन ! आप पूर्ण ज्ञानी हैं आपके शिष्य भी भगवान् की पदवी को प्राप्त किये हुए हैं, तो फिर आप को भी सत्संग की आवश्यकता कैसी ? तब ऋषिजी हंसकर बोले कि प्रिये! एक मीठे जल से पूर्ण सुन्दर सरोवर है, उस में अथाह जल है, ग्रीष्म में भी जिसके सूखने की सम्भावना नहीं। उसके किनारे-तट पर पीपल का एक वृक्ष है, उसकी जड़ें जल के नीचे तक पृथ्वी में पहुंची हैं, जल के अभाव से सूखने का उसे भय नहीं पर उसको वर्षा की आवश्यकता है या नहीं ? देखो प्यारी ! उसे भी वर्षा की प्यास है संसार के खुले वायु मंडल में रहने से जो गर्द गुबार उस पर आ पड़ती है, अथवा पक्षियों की बीट आदि जो पत्तों, टहनियों पर एकत्रित हो जाती है उसे नीचे का जल नहीं दूर कर सकता वर्षा से वह मल धुल कर वृक्ष का स्वरूप पुनः शुद्ध निर्मल प्रतीत होता है। इसी प्रकार संसार में रहने वाले उच्च कोटि के महात्माओं को भी सत्संग, हरी कीर्तन आनन्द प्रद है। निराकार से-अव्यक्त से प्रेम रखने वालों के लिये भक्ति शून्य ज्ञानियों के लिये कठिनाइयां बहुत हैं।

भगवान् ने गीतामें कहा है:-

क्लेशोऽधिकतरस्तेषा,
मव्यक्तासक्त चेतसाम्।
अव्यक्ताहि गति र्दुःखं,
देहवद्भिरवाप्यते ॥

अर्थात् देह धारियोंके लिये अव्यक्तकी प्राप्ति बहुत कठिन है यदि सुगम है तो केवल भक्ति मार्ग, यथा:-

ज्ञाने प्रयास मुदमास्य नमंतएव,
गायन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्त्ताम् ।
स्थाने स्थिता श्रुति गत स्तनुवाङ्मनोभि,
र्ये प्रायिशो जित जितोप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्

वास्तव में भक्ति में आनन्द बहुत मधुर है ज्ञान मार्ग में उद्योग को छोड़ कर, यथा तथा सांसारिक जीवन की दशा में अपने स्थान में स्थित रहते हुए, तन, वाणी और मन से भगवद्भक्ति में लीन रहने वालों से ये त्रैलोक्य जीते जाते हैं।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः

ऐसे नित्य योगी के लिये मैं सुलभ हूं ऐसा भगवान् कहते हैं, यदि भगवान् भक्तोंके लिये अवतार लें तो आश्चर्य ही क्या है।

अकबर एक बड़ा मुगल सम्राट् हुवा है वह हिन्दु धर्मका प्रेमीभी था। गीताके उर्दू तथा फारसी के अनुवाद पहले २ उसी के समय में हुए हैं, एक बार मन्त्री बीरबल से उन्होंने पूछा कि अवतारवाद तो समझ में नहीं आता, जब परमात्मा सर्वशक्तिमान है तो वह अपनी एक शक्ति से सब कुछ कर सक्ते हैं फिर उन्हें स्वयमेव देह धारण करने की क्या जरूरत? बीरबल ने कहा बादशाह सलामत्! हम इसका उत्तर देंगे। कुछ समय बीतने पर एक दिन बीरबल के साथ तथा कई एक सेवक सरदारों के साथ बादशाह किश्ती में दरिया की सैर को गये, बीरबल उनके पुत्र को भी साथ गोदीमें लेगया और एक बालक भी मोम का उस शहजादेकी शकलका चुपचाप किश्तीमें लेगया, जब किश्ती बीच धारा के पहुंची तो उस बालक को जल में फेंक दिया, तो अकबर के होश उड़गये, पुत्र को बचाने के लिये पितृ स्नेह से दरिया में कूद पड़े परन्तु जब बालकको निकाला तो मालूम हुवा कि बच्चा नकली था, बादशाह बहुत नाराज होने लगे, बीरबल ने कहा कि आपके सवाल का जवाब आगया, इतनी शक्ति, सेवक और सरदार साथ होते हुए भी आप स्वयं बच्चे को निकालने के लिये नदी में कूद पड़े यह है प्रेम, इस पर किसी का वश नहीं, महाराज. इसी प्रेम के वशी भूत होकर भगवान् सर्वशक्ति सम्पन्न होने पर भी स्वयं अवतार धारण करते हैं प्यारे पाठको! गज की पुकार पर गरूड़ का भी इन्तजार नहीं किया, नंगे पग ही भागे।

यदा यदा हि धर्मस्य,
ग्लानि र्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य,
तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

ईश्वर की तरफ से प्रति निधि रूप में कहते हैं कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है तब २ धर्मके उत्थान के लिये मैं ऐसी आत्मायें पैदा करता हूं (Carlyele) कारलाइल इसे (Hero Worship) वीरोपसना कहते हैं, वीर आत्माएं देश, जाति तथा धर्मोद्धार के लिये सदैव भगवान् पैदा करते हैं, बात भी ठीक है पूर्ण चेतनात्मक सत्ता के परम निधि परमात्मा हैं, सृष्टि की तमाम चेतन शक्ति उन्हीं की है, चैतन्यता की मात्रा कला कहलाती है, उद्भिज सृष्टि में केवल एक कला का विकास है, स्वेदज में दो, अण्डज में तीन और जरायुज में चार कला का विकास है मनुष्य जीव सृष्टि में सर्वोत्तम और पूर्ण है इसमें पांच से आठ कला तक का विकाश है, आठ कला मानुषी उन्नति की चर्मसीमा - अवधि है, बड़े २ योग्य मनुष्य आठ कला तक विकास प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु जब

मनुष्य शक्ति से संसार के मर्यादाधर्म की रक्षा बाहर हो जाती, तब वास्तव में परमात्मा कला के केन्द्र में से आवश्यकता के अनुसार विशेष कला प्रदान करके ऐसी आत्माएँ भेजते हैं जिन के द्वारा विकट से विकट सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक समस्याएँ हल होती हैं, कठिन से कठिन संकट पृथ्वि के दूर होते हैं, फिर से सृष्टि का निर्दिष्ट रूप से प्रवाह होता है और संसार का कल्याण होता है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

उनका आविर्भाव ही इसलिये होता है, साधु सज्जन भक्तों के परित्राण के लिये, दुष्टोंके विनाश के लिये, धर्मकी पुनः संस्थापना के लिये, मैं युगर में पैदा होता हूं, तथा मेरा उद्भव होता है, हैं ये क्या! परमात्मा के प्रतिनिधि रूप से ये कहते हुये कि मैं ऐसी असाधारण आत्माओं को पैदा करता हूं अब ये क्या कहा कि मैं स्वयमेव पैदा होता हूं, ये दोनो बातें तो एक दूसरे के विरुद्ध होगई, ऐसी विरुद्ध बात, एक दूसरे के विरोधी, एकही प्रसंग में, एकही स्थान पर कहने वाले के विरुद्ध उस समय के विद्वानों ने कुछ भी आक्षेप नहीं किया? अर्जुन जैसे तीव्र बुद्धि विख्यात महापुरुष ने भी कोई शंका नहीं की, ये कैसी विचित्र बात है? पहले श्लोक में सृष्टिके कर्त्ता परमात्मा बने अगले श्लोक ही में फल रूप जीव सृष्टि आप बने, यह क्या लीला है? आओ पाठको. गीतामें इससे अगला श्लोक भी देखें, शायद कुछ भेद खुले शायद किसी रहस्य का पता लगे, पूर्वापर ग्रन्थ के पाठसे शायद कुछ प्रकाश हो।

जन्म कर्म च मे दिव्य,
मेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म,
नैति मामेति सोऽर्जुनः ॥

मेरे ऐसे, पूर्व श्लोक में कहे हुए, जन्म को तथा दूसरे श्लोक में कहे हुए, साधुओं के परित्राण आदि कर्म को अर्थात् एक दूसरे के विरुद्ध ऊपर कही हुई दिव्य बात को ज्यों का त्यों ठीक इसी प्रकार जो तत्त्व से जानता है—इस दिव्य रहस्य को जो समझता है, वह देह को छोड़ कर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है, जन्मकर्म के बन्धन से छूट जाता है, ऐसा दिव्य रहस्य है, एक दूसरे के विरुद्ध बात नहीं है, यह जीव ब्रह्मकी एकता का गूढ विषय है, इसको जानने वाले अर्जुन ने इसी लिये कोई शंका नहीं की। "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" उसकी सृष्टि करके उसी में स्वयं प्रवेश कर लीला करने लगा, जगत् तद्रूप है, उससे पृथक् नहीं है, इन उपनिषदों के वाक्योंको स्पष्ट करने वाला यह भगवान् का वचन है, "आत्मा द्विधा, जीवात्मा परमात्मा-श्चेति" इस सांख्य सूत्र का साक्षात्कारी है। अल्पज्ञता से युक्त वही व्यापक आत्मा जीव है, सर्वज्ञता से युक्त वही व्यापक आत्मा ब्रह्म है, ज्ञान द्वारा अल्पज्ञता का नाश होने पर जीवकी कोई प्रथक् सत्ता नहीं रहती, "तद्रूपमेती" उसीके रूपको प्राप्तकर लेता है, तल्लीन हो जाता है। यह ही वह अवस्था है जहां ध्याता, ध्यान और ध्येय एक होजाते हैं, यह ही वेदान्त है, यह ही अन्तिम पद है। इसलिये भगवान् ने स्वयमेव अपने मुखारविन्द से कहा है। कि इस रहस्य को जान कर जीव मुक्तहो जाता है।

चेतन सत्ताके, अनन्त शक्ति के, पूर्ण कलाओं के तीन महा केन्द्र, ब्रह्मा विष्णु, शिव, की कुछ कलाओं को लेकर पालक रक्षक, शक्ति, विष्णु भगवान् का अवतार, धर्मोद्धार के लिये होता है, वह कोई भिन्न रूप नहीं है, मुख्य दश अवतार दश समय के उसके दश रूप हैं यथा:-

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव,
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते,
युक्ताह्यस्य हरयः शतादश ॥

ऋ० ६, ४७, १८

कृष्णं तएम रुशतः पुरोभा,
श्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यद प्रवीता दधते ह गर्भं,
सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥

ऋ० ४, ८, ६

अगुणहि सगुणहिं नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ॥
अगुण अरूप अलख अज जोई ।
भक्त प्रेम वश सगुण सो होई ॥
जो गुण रहित सगुण सो कैसे ।
जल हिम उपल विल नहिं जैसे ॥
जब २ होई धर्म की हानी ।
बाढ़ैं असुर अधम अभिमानी ॥
करैं अनीति जाई नहिं बरणी ।
सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी ॥
तब २ धरि प्रभु विविध शरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥
सोई यश गाई भक्त भव तरहिं ।
कृपासिन्धु जन हित तनु धरहिं ॥

भक्ति महारानी

[ले० श्रीभोले बाबा अनूपशहर]

श्लोक

हत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातः सूर्यसमप्रभाम् ।
ब्रह्मस्वरूपिणीं देवीं भक्तकामदुघां भजे ॥ १॥

छप्पय

वन्दों भगवद्भक्ति भक्त वर्गन प्रिय जननी
पालक ज्ञान विराग, राग द्वेषादिक हननी

अखिल विश्व आधार विश्व उत्पादक मारक
अक्षय सुख दातार मोक्ष कारक भव हारक
कोट सूर्य सम तन प्रभा,
कोट चन्द्र सम शांत मन।
कोट मदन लावण्य छबि,
बसिये भोला उर सदन ॥१॥

जिन की कृपा से सहज ही भगवन् को प्राप्त होकर भक्त सदा के लिये जन्म मरण से मुक्त होकर अखंड आनन्द को भोगता है, उन भक्ति महारानी को तन, मन वचन से बारम्बार साष्टांग दंडवत है। शास्त्रकारों का मत है कि भक्ति, भगवन् और भागवत् कथन मात्र ही भिन्न भिन्न हैं, नहीं तो तीनों एक ही हैं। यद्यपि यह बात यथार्थ ही है और जो कोई ऐसा मानता है, वह हमारे गुरु का भी गुरु है, अवश्य तीनों एकही होंगे परन्तु जहां तीनों एक हैं अथवा हो जाते हैं, वहां एक दो अथवा तीन का कथन ही नहीं बनता, कथन तो तीन में ही होता है। जहां तीन हैं, वहां न्याय दृष्टि से देखा जाय तो भगवन् से भक्ति महारानी की विशेषता है. क्या विशेषता है? यदि पूछते हो तो सुनो, भगवन् तो सबके लिये समान हैं इसलिये वे प्राणियों के कर्मानुसार उनको शुभ अथवा अशुभ फल देते हैं, शास्त्र विहित कर्मों का फल सुख और शास्त्र निषिद्ध कर्मों का फल दुःख देते हैं। इस प्रकार भगवन् तो सुख और दुःख दोनो देते हैं और भक्ति महारानी तो केवल सुख ही देती हैं, उनके राज्य में दुःख का नाम तक भी नहीं है, यह ही भक्ति महारानी की विशेषता है, इसीलिये वेद और पुराणों में भी अधिक भक्ति की महिमा वर्णन की है, वेद के कर्म, उपासना और ज्ञान तीन कांड हैं। ज्ञान कांड सबसे छोटा है, उपासना कांड उस से अधिक विस्तार वाला है और कर्मकांड सबसे अधिक विस्तार वाला है। कर्मकांड और उपासना कांड तो भक्ति स्वरूप ही है, ज्ञान कांड में भी भक्ति का ही विशेष वर्णन है, भगवन् स्वरूप का वर्णन तो बहुत थोड़ा है। इससे सिद्ध है कि संपूर्ण वेद भक्ति की महिमा वर्णन कर रहे हैं। इसी प्रकार पुराणों में भी भक्ति की महिमा गाई है। पद्म पुराण में लिखा है 'जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखी गीली सब प्रकार की लकड़ी को भस्म कर देता है इसी प्रकार भगवद्भक्ति इस जन्म और जन्मांतर के पापों को भस्म कर देती है। एक स्थल पर लिखा है 'देवता भगवन् से प्रार्थना करते हैं कि हमने जो कुछ जप तप किया है, उसके फल से हमारा जन्म भरत खंड में हो, जहां हम आपकी भक्ति करें।' नारद पुराण में कहा है 'भगवन् धनादिक से प्राप्त नहीं होते, केवल भक्ति से भगवन् की प्राप्ति होती है, जो भक्ति पूर्वक भगवन् का पूजन करते हैं, उनको संपूर्ण अभीष्ट प्राप्त होता है, विशेषता यह है कि भगवन् केवल जल से पूजने से ही सर्व दुःख दूर कर देते हैं'। वामन पुराण में कहा है 'जिनकी शंख चक्रगदा पद्मधारी नारायण में अनन्य भक्ति है, वे अवश्य नारायण को प्राप्त होते हैं। महाभारत में कहा है 'हजारों जन्मों तक जप, तप, ध्यान करने से जिसके पाप दूर हो जाते हैं, उसी की भगवत् में भक्ति होती है'। वैशाख माहात्म्य में वर्णन है 'प्रथम तो भरत खंड में जन्म होना ही दुर्घट है जन्म होने पर भी मनुष्य होना दुर्घट है, मनुष्य होकर भी स्वधर्म का अनुष्ठान करने वाला दुर्लभ है और स्वधर्म का अनुष्ठान करने वाला होकर भी भगवद्भक्त होना बहुत ही दुर्लभ है'। पद्म पुराण में एक स्थान पर यह भी कहा है 'जिसके हृदय में प्रेम भक्ति का

निवास होता है उसको यमराज स्वप्न में नहीं भी देखते और प्रेत पिशाच, राक्षस देवता आदि भी भगवद्भक्त के कार्य में विघ्न नहीं कर सक्ते'। नारद पुराण में यह भी लिखा है 'अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, इन चारों के लिये मनुष्य प्रयत्न करते हैं, भगवत् भक्ति से ये चारों अनायास प्राप्त हो जाते हैं'। पद्म पुराण में एक स्थल पर कहा है भगवत् भक्तों के लिये मुक्ति का द्वार खुला हुआ है इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। क्योंकि भगवत् भक्ति से बढ़ कर अन्य कोई साधन नहीं है'। ब्रह्मांड पुराण में कहा है 'जो भगवत् के भक्त नहीं हैं, उनको करोड़ों कल्प तक भी मोक्ष अथवा ज्ञान प्राप्त नहीं होगा'। भागवत् में लिखा है 'नारायण की भक्ति के लिये ब्राह्मण कुल में जन्म होने, अथवा देव शरीर होने की आवश्यकता नहीं है, न ऋषीश्वर होने की, न व्रत, दान, अथवा यज्ञ की अपेक्षा है, केवल भक्ति से नारायण प्रसन्न होते हैं, भक्ति के सिवाय अन्य सब स्वांग हैं'। भागवत् में उद्धव से श्रीकृष्ण भगवान् का वचन है 'योग, सांख्य वेद का अध्ययन अथवा वैराग्य मुझे वश में नहीं कर सक्ते, केवल भक्ति ही मुझे, वशमें कर सक्ती है. स्कंद पुराण में कहा है 'भगवद्भक्ति से बढ कर अन्य कोई पंथ नहीं है। भगवत का वाक्य है भक्ति के सहारे गोपी, गौ, वृक्ष, पशु, सर्प आदिक पवित्र होकर मुझे प्राप्त हुये हैं'। इसी प्रकार गीता में भगवान् ने कहा है 'वेद के पढने, तप करने, दान करने अथवा यज्ञ करने से मुझे कोई नहीं देख सक्ता केवल अनन्य भक्तिसे मैं जाना जाता हूं, देखनेमें आता हूं और मुझ में प्रवेश हो जाता है'। इस प्रकार अन्यत्र भी अनेक श्लोकों से भक्ति की महिम वर्णन की है विस्तार भय से यहां लिखे नहीं है। जिस किसी से जब कभी वरदान मांगने को कहा गया है तो उसने भक्ति का वरदान ही मांगा है। इससे भक्ति की महिमा प्रसिद्ध है। जो २ संत महात्मा जगत्में हुवे हैं। वे सब भक्ति की कृपा से हुवे हैं। भक्ति विना भगवत् की प्राप्ति नहीं होती। यद्यपि भगवत् की प्राप्ति का साधन ज्ञान भी है परंतु भक्ति विना ज्ञान की सिद्धि नहीं होती, ज्ञान की प्राप्ति भक्तिके आधीन है इसलिये भी भक्ति की विशेषता है। जिस समय भक्ति महारानी की कृपा होती है और उनकी एक झलक भी भाग्यवान् भक्त को दीख जाती है तो उसी समय उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। पाप ही भगवत् प्राप्ति में आड़ है, पाप नष्ट होते ही भगवत् का साक्षात्कार होता है। भगवत् का साक्षात्कार होते ही भागवत् कृत् कृत्य हो जाता है और फिर उसका कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। भक्तिमहारानी जिसके शिर पर अपना हाथ रख देती हैं, वह वेद शास्त्र सबका ज्ञाता हो जाता है, उसके लिये सुनना सुनाना शेष नहीं रहता, सब उसका सुना हुआ हो जाता है। उसकी सर्व शंकाओं का समाधान हो जाता है, फिर उसके चित्त में किसी प्रकार की शंका नहीं उठती। जिस भाग्यशाली को भक्ति महारानी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होजाता है, उसके लिये फिर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता, सब प्रकार का ऐश्वर्य उसके लिये सुलभ हो जाता है। भक्ति महारानी की कृपासे भक्त को अखंडानन्द का अनुभव होता है, फिर उसको स्वप्न में भी दुःख नहीं होता। भक्ति महारानी के अनुग्रह से भक्त सदाके लिये तृप्त होजाता है, जैसा वह तृप्त होता है उसको परम भक्त ही जान सक्ता है, कथन कोई नहीं कर सक्ता। भगवत् संपूर्ण सुखों की अवधि रूप हैं. संसार भर में जितना सुख है, वह भगवत् के

सुख के कण मात्र भी नहीं है। भगवत् भक्ति महारानी के अधीन हैं। जिसको भगवत् की प्राप्ति हो गई है, उसके सुख का कौन वर्णन कर सक्ता है, कोई नहीं! शेष शारद ब्रह्मादिक देवता भी उसका सुख वर्णन नहीं कर सक्के तो साधारण मनुष्य की तो गणना ही क्या है? जब लौकिक सुख का ही कोई वर्णन नहीं कर सक्ता तब अलौकिक सुख का वर्णन तो हो ही कहां से?

संतराम नाम के एक भक्त ने दीर्घ काल तक निरंतर आदर सत्कार सहित भक्ति महारानी की आराधना की, अंत में महारानी ने उसे दर्शन दिया वर मांगने को कहा। संतराम ने भगवत् प्राप्ति का वर मांगा और भक्ति महारानी तथास्तु कह कर चली गई। जैसे कोई बहुत दिनों का असाध्य रोगी अचानक आरोग्य हो जाय ऐसे ही संतराम भक्ति महारानी की कृपा से स्वस्थ होकर आश्चर्य करता हुआ, इस प्रकार अपना अनुभव कहने लगा:-

संतराम: ओ हो! क्या से क्या हो गया! वृक्षों के समान मेरी बुद्धि जड़ हो गई थी! पशु पक्षियों के समान मैं भ्रम में पड़ा हुआ था, खाना पीना ही जानता था, इन्द्रियों के विषयों में ही आनन्द मानता था, कभी हंसता था, कभी रोता था, विशेष करके रोया करता था, अज्ञान में पड़ा हुआ दुःख उठा रहा था, किंचित् भी कभी शांति नहीं मिलती थी, कभी मूढ हो जाता था, कभी क्षिप्त, कभी विक्षिप्त, चित्त कभी एकाग्र अथवा निरुद्ध नहीं होता था, फिर शांति कहां से मिलती? भगवत् की खोज में चारों धाम घूम आया, कहीं पता न लगा, बहुत दिनों तक उपवास करता हुआ भूखा मरता रहा, शरीर को सुखा दिया! आज भक्ति महारानी की कृपा से मुझे मालूम हुआ है कि भगवत् तो मेरे बहुत ही पास हैं, समीप से भी समीप हैं, मेरे मन में ही विराजमान हैं, मुझे केवल मन को ही ठीक करना चाहिये था, मन शोधने के बदले मैंने तो शरीर को ही फूंक डाला. वही कहावत हुई कि एक व्याघ्र के पकड़ने के लिये सारा जंगल जला दिया' आज भक्ति महारानी की कृपा से मन वश में आगया। कैसे वश में आगया? यदि कोई पूछे तो उसका उत्तर यह है कि मन बड़ा चतुर है, अपनी वांछित वस्तु में ही एकाग्र होता है, जब तक अपनी रुचि अनुकूल वस्तु नहीं मिलती, तब तक स्थिर नहीं होता, आज मन को उसकी इच्छानुकूल वस्तु मिल गई है इसलिये स्थिर हो गया है। परमानंद में डूबा हुआ है, मुझे इस अपूर्व आनन्द की प्राप्ति की स्वप्न में भी आशा नहीं थी! आज भक्ति महारानी के अनुग्रह से मुझे अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा है! बगल में छोरा, शहर में ढुंढेरा! मैं भगवत् को बाहर ढूंढ रहा था भगवत् बुद्धि गुहा में छुपे हुये बैठे थे, भेदी से ही वस्तु का पता मिलता है, दूसरे से नहीं मिलता। भक्ति महारानी सदा भगवत् के साथ रहती हैं, उनसे भगवत् कैसे छुप सक्ते हैं? नहीं छुप सक्ते. उन्हीं भक्ति महारानी ने आज मुझे चित्त चोर भगवान् का दर्शन करा दिया है! 'क्या भगवत् तुम्हारी बुद्धि में ही हैं? अन्य कहीं नहीं हैं? नहीं नहीं ऐसा नहीं! अब तो भगवान् सर्वत्र दृष्टि आ रहे हैं, चराचर सब में दिखाई दे रहे हैं! डाल में, पात में, फल में, फूल में, मूल में, सब में भगवत् विराजमान हैं, सूर्य में, चंद्र में, आकाश में, वायु में अंतरिक्ष में, स्थूल में, सूक्ष्म में सबमें भगवत् रम रहे हैं! पशु में, पक्षी में,, मनुष्य में, देव में, भगवान्

दिखाई देते हैं। मुझ में, तुझ में, इस में, उस में संपूर्ण विश्व में भगवन् परिपूर्ण हैं! 'क्या विश्व में ही हैं, विश्व के बाहर नहीं हैं? नहीं, नहीं, विश्व राई के समान है, भगवन् सुमेर के समान हैं! यह उपमा भी यथार्थ नहीं है, भला! सत्य और कल्पित का उपमान उपमेय भाव कैसे हो सक्ता है? नहीं हो सकता! स्वप्न की जाग्रत के साथ उपमा बनती ही नहीं है! भगवन् के निरुपाधिक और सोपाधिक दो स्वरूप वेद वेत्ताओं ने वर्णन किये हैं, यह उनका कथन शिष्यों के समझाने के लिये है, नहीं तो निरुपाधिक के सामने सोपाधिक की कुछ भी सत्यता नहीं है, तभी तो महात्माओं के मुख से सुनने में आता है कि निष्प्रपंच के सामने प्रपंच की किंचित् भी सत्ता नहीं है गीता में स्वयं भगवान् का वचन है कि ईश्वर रूप इस आत्मा को शास्त्र नहीं काटते, न इसको अग्नि जलाता है, न इसको जल गलाता है, न इसको वायु सुखाता है क्योंकि यह अव्यक्त हैं, अचिंत्य है और अविकारी है। भक्ति महारानी की कृपा से आज मुझे आत्मरूप से भगवन् के दर्शन हो रहे हैं। अब मैं भक्ति महारानी को नमस्कार करूं अथवा भगवन् को नमस्कार करूं? भगवन् और भक्ति दोनों एक ही हैं, मेरा कहीं पता ही नहीं मिलता, तब एक भगवन् ही भगवन् हैं, दूसरा कोई है ही नहीं, तब नमस्कार कैसे बने? नहीं बनता। इसीलिये भगवान् दत्तात्रेय ने कहा है।

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि।
निराकारं कथंवन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम्

अर्थः- जिस आत्मा करके अपने में यह दृश्यमान् संपूर्ण जगत् पूर्ण हो रहा है यानी जिस चेतन में यह सर्व प्रपंच शुक्ति में रजत के समान कल्पित है, वस्तुतः नहीं है, उस निराकार, अव्यय, शिव रूप की हम कैसे वन्दना करें यानी वन्दना करना बनता ही नहीं है क्योंकि अपने भिन्न की वन्दना होती है, अभिन्न की नहीं होती, आत्मा अभिन्न है इसलिये वन्दना करना नहीं बनता। श्रुति में भी कहा है 'अयमात्मा ब्रह्म' फिर भी ऐसे आत्म रूप भगवन् की प्राप्ति कराने वाली भक्ति महारानी को बारंबार नमस्कार है।

इतना कह कर संतराम नीचे का भजन गाता हुआ, भगवन् स्वरूप में तल्लीन हो गया।

जब से देखे कृष्ण कन्हाई,
आंखिन छाई हरियायी।
कुछ का कुछ है देत दिखाई,
आंखिन छाई हरियायी ॥ १ ॥
बूंद बूंद में सागर देखूं,
अणु अणु मांही सूर्य लखूं।
लील गई पर्वत कूं राई,
आंखिन छाई हरियायी ॥ २ ॥
जीव जीव कूं ईश बताऊं,
बंधे हुये को मुक्त कहूं।
अन कहनी सद्गुरु कहलाई,
आंखिन छाई हरियायी ॥ ३ ॥
ऊंच नीच में भेद न जानूं,
सच्चित् आनंद सर्वमयी।
नाम रूप जग गया बिलाई,
आँखिन छाई हरियायी ॥ ४ ॥
मेरा तेरा मैं तू भूला,
आप आप में गया समा।

भोला ऐसी मत बौराई,
आंखिन छाई हरियायी ॥ ५ ॥

पाठक ! भक्ति महारानी गंगाजी के समान नीच ऊंच सबको तारने वाली है, वर्णाश्रम जात पांत का भक्ति में नियम नहीं है, कोई वर्ण हो, कोई आश्रम हो, कोई जाति हो, भक्ति के सबही अधिकारी हैं। भक्त माल में एक कथा इस प्रकार है:-

महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ आरंभ करते समय श्री भगवान से कहा 'हे भगवन्! हमारा यज्ञ सफल हुआ या नहीं, इस बात का निश्चय हम को किस प्रकार होगा'? भगवान ने कहा 'जब हमारा शंख आप से आप बजने लगे तब समझ लेना कि हमारा यज्ञ पूर्ण और सिद्ध हो गया'। यह सुन कर राजा युधिष्ठिर ने भगवान की आज्ञानुसार शंख को यज्ञ स्थान में स्थापित कर दिया। यज्ञ आरंभ किया गया, पृथिवी पर जितने ब्राह्मण, ऋषीश्वर, ज्ञानी, योगी, राजा और रंक थे, सबको यज्ञ में आने के लिये निमंत्रण भेजा गया। यज्ञ समाप्त हुआ, जितने ब्राह्मणादि यज्ञ में आये थे, उन सबको राजा ने दान तथा मान से संतुष्ट किया, सबको यथा योग्य भोजन कराया तो भी शंख न बजा। ऐसा देख कर राजा युधिष्ठिर ने संदेह युक्त होकर भगवान श्रीकृष्ण से शंख न बजने का कारण पूछा। तब भगवान ने कहा-हे राजन्! ऐसा मालूम होता है कि किसी भक्त ने अपनी झूंठन से इस यज्ञ को सफल नहीं किया इसी कारण से शंख नहीं बजा। राजा ने विनय की 'महाराज! सब देशों के ब्राह्मण और ऋषीश्वर आये हैं, क्या उनमें से कोई भी आपका भक्त नहीं है'? भगवान बोले 'भाई! ब्राह्मण और ऋषीश्वरों से पूछना चाहिये'। राजा ने सब से पूछा तो किसी ने अपने को ब्राह्मण बताया, किसी ने ऋषीश्वर बताया, किसी ने पंडित, किसी ने ब्रह्मवादी किसी ने योगेश्वर, किसी ने वेद पाठी, किसी ने अग्निहोत्री बताया, परंतु किसी ने भी अपने को भगवत् उपासक नहीं बताया तब राजा, द्रौपदी, अर्जुन आदि पांडवों ने भगवान से अपना भक्त बताने के लिये प्रार्थना की। भगवान बोले 'हमारा भक्त वाल्मीकि श्वपच है"! यह सुनकर अर्जुन भीमादि वाल्मीकी के घर गये और प्रणाम करके अपने घर पर चलने के लिये उन से विनय करने लगे। वाल्मीकि ने प्रथम उनकी प्रार्थना स्वीकार न की परंतु जब उन्होंने बहुत आग्रह किया तो भगवत् की इच्छा समझ कर वे राजा के घर पर आये। राजा युधिष्ठिर और भक्त वत्सल भगवान ने बड़े आदर और सन्मान से उनको योग्य स्थान पर बैठाया, द्रौपदी ने अपने हाथ से षट्रस व्यंजन तैयार किये और सुवर्ण के थाल में लाकर वाल्मीकि जी के आगे रक्खे। भगवत् भक्त ने भोग लगाया, शंख थोड़ा बजकर चुप हो गया। भगवान ने शंख में छड़ी मार कहा 'अरे! चुप कैसे हो गया? थोड़ा ही क्यों बजा? अब तो पूर्ण ध्वनि से बजना चाहिये'। शंख ने विनय की महाराज! द्रौपदी से पूछिये! द्रौपदी हाथ जोड़ कर कहने लगी 'महाराज! मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैं अवश्य अपराधिनी हूं, बात यह है कि मैंने अनेक प्रकार के भोजन तैयार किये थे, और सब अलग २ इनके सामने लाकर रक्खे थे, आपके भक्त ने सबको मिला कर भोग लगाया, यह देख कर मुझे बुरा मालूम हुआ और मैंने मन में कहा कि यह नाना प्रकार के भोजनों का स्वाद नहीं जानते इसलिये सबको मिला

कर खाते हैं'! भगवान बोले 'अब, आगे ऐसा कभी मत करना, कभी भूल कर भी भगवद्भक्तों को बुरा न कहना, और उनके आचरणों में दोष दृष्टि मत करना'! पश्चात् जब शुद्ध और विश्वास युक्त चित्त से भोजन कराया गया तब शंख उच्च ध्वनि से गूंज के साथ बजा! राजा युधिष्ठिर अपना यज्ञ पूर्ण हुआ समझ कर बहुत प्रसन्न हुये! भगवद्भक्ति और भक्तों का प्रताप नगर भर में फैल कर ब्रह्मांड भर में फैल गया। सच कहा है:-

हरि को भजे सो हरि का होई।
जात पाँत पूछे नहिं कोई॥

महाभारत में भगवान का वचन है 'चारों वेदों का जानने वाला भी हो और मेरा भक्त न हो तो उस से चांडाल और पतित जो मेरे भक्त हैं, वे ही मेरे प्यारे हैं, उसका मेरे समान ही पूजन करना चाहिये!

भक्ति का ऐसा महात्म्य सुन कर जो भक्ति परायण न हो, उसके समान कौन मूर्ख होगा? कोई नहीं! भगवद्भक्ति लोक परलोक दोनों में सुख देने वाली और अंत में परम पद प्राप्त कराने वाली है, ऐसी भक्ति महारानी का अनुष्ठान करके सबको अपना श्रेय-कल्याण कर्तव्य है।

प्रश्नः- भक्ति का महात्म्य आपने जो वर्णन किया और अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया, यह हमको मान्य है, परंतु भक्ति का स्वरूप जाने बिना भक्ति में प्रवृत्ति नहीं हो सकी, इसलिये भक्ति का स्वरूप बताना चाहिये, भक्ति क्या और कैसी है? मासिक पत्रिका का नाम भी तो भक्ति ही है, क्या यह ही आपकी भक्ति महारानी हैं?

उत्तरः- भाई! भक्ति महारानी का महात्म्य कहा है तो उनका स्वरूप क्यों नहीं बतावेंगे? अवश्य बतावेंगे, भक्ति का स्वरूप बतावेंगे, विभाग बतावेंगे, भक्तों की अनेक कथायें सुनावेंगे, भक्ति के साधन बतावेंगे। धीरे २ बतावेंगे, जल्दी करना ठीक नहीं है, मासिक पत्रिका भक्ति महारानी का प्रतिपादन करती है इसलिये उस का नाम भी भक्ति है। इन दोनों का प्रतिपाद्य और प्रतिपादक भाव संबंध है। यदि भक्ति के पढने में प्रमाद नहीं कीजियेगा तो धीरे २ भगवद्भक्ति और भगवत् की प्राप्ति अवश्य होगी।

विद्या

इन्द्र वज्रा छन्द।

[ले० श्रीभोले बाबा अनूपशहर]

१

विद्या हमें पोषत मातु जैसे।
विद्या सदा पालत तात जैसे॥
विद्या हमें सद्गुरु ज्यों सिखाती।
विद्या हमें ईश्वर से मिलाती॥

२

विद्या सिखाती धनका कमाना।
विद्या बताती बलका बढ़ाना॥
व्यापार खेती सिखलावती है।
दो आंख की चार बनावती है॥

३

बैठे हुये सैर करावती है।
सिद्धि तथा ऋद्धि बढ़ावती है॥
जीते हुये कार्य बनावती है।
पीछे मरों के संग जावती है॥

४

भाई न ले तस्कर ना चुरावे।
न अग्नि जाले जल न गलावे॥
जाओ जहां ही तहं साथ जावे।
आपत्ति में भी सुखते सुतावे॥

५

विद्या दया धर्म दया सिखावे।
विद्या गुणी पंडित है बनावे॥
विद्या हमें शूर बनावती है।
संतोष दे धैर्य बढावती है॥

६

क्या जीव क्या ईश बताय विद्या।
क्या भक्ति क्या ज्ञान सिखाय विद्या
क्या सत्य क्या झूंठ जताय विद्या॥
क्या बंध क्या मोक्ष सुझाय विद्या

७

विद्या विना है नर मूर्ख कैसा।
अंधा विना आंखिन होय जैसा।
जावे जहां ही अपमान पावे।
बे सींग दे पूंछ पशु कहावे॥

८

विद्या पढ़े सो जग मन्य होई।
विद्या पढ़े जो नर धन्य सोई॥
विद्या पढ़े सो हरि भक्त होई।
विद्या पढ़े सो भव मुक्त होई॥

९

विद्या पढ़े सो यश कीर्ति पावे।
विद्या पढ़े सो सुख शांति पावे॥
ज्यों चन्द्रमा शीतल शांत भासे।
ज्यों सूर्य चारों दिश में प्रकाशे॥

१०

ब्रह्मा रचे हैं जग पायविद्या।
पालें जगत विष्णु सहाय विद्या॥
संहार कर्ता शिव पाय विद्या।
हों सिद्ध योगी सब पाय विद्या॥

११

माहात्म्य विद्या श्रुति संत गाया।
व्यासादि शेषादि सभी सुनाया॥
वर्षों हजारों कहते रहे हैं।
ना पार पाया चुप हो रहे हैं॥

१२

भोला कहे सो मति मन्द कैसे।
काछी न जाने मणि मूल्य जैसे॥
विद्या कृपा को मुख बंद खोला।
ज्यों बाल त्यों तोतर वाक्य बोला

भजन

अपन को आपन ही बिसरयो ॥ टेक ॥
जैसे श्वान कांच मन्दिर में, भ्रमि भ्रमि भूंकि मरयो
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखि के, आपन कूप परयो ॥
जैसे गज लखि फटिक शिला में, दशनन जाय अरयो
मर्कट मूंठ छांड नहि दीनी, घर घर भ्रमत फिरयो ॥
सूरदास नलिनी को सुअना कहु कौने पकरयो ॥

२

हांत सो जो रघुनाथ ठटी ॥ टेक ॥
पच पच रहे सिद्ध मुनि साधक,
तब हूं बढ़ी न घटी ॥ १ ॥
योगी योग धरत मन अपने,
शिर पर राख जटी ॥ २ ॥
ध्यान धरत महादेव अरु ब्रह्मा,
तिनहूं पै न घटी ॥ ३ ॥
योगी यती तपी आराधे,
कोऊ पुनि रहै अटी ॥ ४ ॥
सूरदास भगवन्त भजन बिन,
कर्म फांस न कटी ॥ ५ ॥

३

रे मन जन्म पदारथ जात ॥ टेक ॥
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वै है, ज्यों तरुवर के पात ।
सुनत बात कफ कण्ठ बिरोधी, रसना टूटी बात ॥
प्राण लिये यम जात मूढ मति, देखत जननी तात ।
छिन इक मांहि कोटि युग बीतत पीछे नरक की बात
यह जग प्रीति सुआ सेमर की, चाखत ही उड़ि जात।
यम के फन्द नहीं पड़ बौरे, चरणन चित्त लगात ॥
कहत सूर वृथा यह देही, अन्तर क्यों इतरात ॥

४

सब मति है तें यह मति भावै ॥ टेक ॥
एक अधार नाम यश कीर्तन, जब कब पार लगावै ।
धर्म कर्म तीरथ व्रत संयम, योग यज्ञ श्रुति गावै ॥
नहीं अधिकार नहीं चल माया, चंचल मन न ठहरावै
नाना ग्रन्थ वेद विधि नाना, काहे को डहकावै ॥
भक्तराम प्रभु पतित पावन हैं, यह भरोस जिय आवै

५

पढ़ो रे भैया कृष्ण गोविन्द मुरार ॥ टेक ॥
कह प्रह्लाद सुनो रे बालक, लीजो जन्म सुधार ॥
को है हिरनाकुश अभिमानी, जो सकि है तुम्हें मार।
राखन हारो और है कोऊ, श्याम धरे भुज चार ॥
पूरण पुरुष नारायण स्वामी, सो करि हैं रखवार ।
सूरदास प्रभु हरि सों मीता, कभू न आवे हार ॥

६

दिन आगया निकट करार का कुछ करना हो तो कर तू ॥
उदय अस्त लो चक्र चलाते,
चकवे होगये मरे काल ते ।
बच न सकै नहीं किसी हालते,
बल थक गया बलवन्त का ।
सुन साचा यार जिकर तू ॥ १ ॥
जो पृथिवी के दूहने वारे,
सो भी बली कालने मारे ॥
भीष्म आदि कौरव सारे,
गये बड़े परिवार का ।
उस काल बली से डर तू ॥ २ ॥
रावण कीचक से भी मर गये,
धुंधुंमार अजपाल डिगर गये ।
हो होकर नर धरण पसर गये,

प्यार छोड़ कर यार का।
गह भक्ति हिरदे धर तू ॥ ३ ॥
तज दे झूठ और सुन उचारी,
परधन धूल समान विचारी।
हार जीत तज कहे पुजारी,
शरना ले करतार का।
मिट जावे फिर मर तू ॥ ४ ॥

७

ऐ मेरे दिले शैदा जो तू है वो ही मैं हूं ॥ टेक ॥
आइना उठाय लाये अक्स से फरमाये,
तू बात क्यों नहीं करता, जो तू० ॥ १ ॥
जब आग लगी तन में बोला यों परवाना,
यह शमा किसने फूंका। जो तू० ॥ २ ॥
कहिये तो मेरे प्यारे तुझ से क्या रुकावट,
मैं मौज हूं तू दरिया। जो तू० ॥ ३ ॥
हैरत जो बहुत छाई परदे से निदा आई,
बेहोश न हो मूसा। जो तू० ॥ ४ ॥
मैं राज मुबारिक पर ख़ालिक ने यह फरमाया,
एक मीम का परदा है। जो० ॥ ५ ॥
मजनू यही कहता था हर वक्त बयाबां में,
ऐ सामने आ लैला। जो तू० ॥ ६ ॥

८

बजाई है बंशी भली बंशी वारे,
खिलाई है दिल की कली बंशी वारे ॥ टेक ॥
सुधा से अधिकतर मधुरता है इस में,
है किस मंत्र की यह ढली बंशी वारे ॥ १
तेरे दरश को शिवने मुरारी,
स्वतन पै विभूति मली बंशी वारे ॥ २ ॥
तरसते हैं जिसको मुनि शेष नारद,
विधाता की बुद्धि छली बंशी वारे ॥ ३ ॥

९

हमें नाथ दर्शन दिखाना पड़ेगा,
शरण में पड़े को निभाना पड़ेगा ॥ टेक ॥
बहा जात संसार सागर में भगवन,
किनारे पै हमको लगाना पड़ेगा ॥ १ ॥
तड़फते हैं हरदम दरश को तुम्हारे,
गिरे हम पड़े हैं उठाना पड़ेगा ॥ २ ॥
दिये तुम ने दर्शन ध्रुव जी को जाकर,
अनाथों का काज भी बनाना पड़ेगा ॥ ३॥
तेरे प्रेम में खाक दर दर की छानें,
अनाथों का रस्ता बताना पड़ेगा ॥ ४ ॥

वेदसूर्योदयः

[ले० श्री० पं० मेधाव्रत जी आचार्य इटोला,

१०

श्रुतिभानूदयोऽयं जगदानन्दयतं इह नितान्तम् । ध्रुवपदम्
ध्वान्तमपास्य ततं जगतीदं तनुते मोदमनन्तम् ।
अज्ञानाहतमानवचित्तं ज्ञानविकासि सुशान्तम् ॥ श्रु०
निद्राणं जनपंकरविन्दं ध्वान्तनिशोह निशान्तम् ।
उन्निद्रं रचयन्नतितान्तं भासयतीह भवान्तम् ॥ श्रु०
सुन्दर काव्यमहीरुहरम्यं कृत कवि कोकिल गीतम् ॥
भामिर्मण्डितमातन्वानः सारस्वत विपिनान्तम् ॥ श्रु०
कविताम्भोरुहवृन्दमरन्द रसयन् रसिकमिलिन्दम् ।
स्तुतनृविहंगमचारुचरित्रैः सानन्दं हृदि शान्तम् ॥ श्रु०
पीताम्बरधरवर्णिवरेण्यं गुरुकुलमात्मशरण्यम् ।
आत्मगुतिभिर्विदधदमन्दं मोदयुतं ससुकान्तम् ॥श्रु०॥
निगममन्त्रसुमगन्धवहोऽयं भुवने शान्तिसमीरः ।
मन्दमन्दमिह वहति वनान्तं विदधत्सुमितलतान्तम् ॥श्रु०

भक्ति के संरक्षक

१. राय बहादुर ला० सेवकराम जी एम. एल. सी, बार-ऐट-लौ लाहौर १२५)
२. भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी १११)
३. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०१)
४. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)
५. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)
६ सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा ५१)
७. राव श्रीराम जी रईस सांगल २५)
८. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)
९. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)
१०. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)
११. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्सपेक्टर आफ स्कूल्ज पटना २५)
१२. श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी २५)
१३. सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली २५)
१४. चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गांवा २५)
१५. बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर २५)
१६. पं० मूलचन्द जी शर्मा (डहीना निवासी) अकाउण्टैन्ट हेड आफिस जयपुर २५)
१७. ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी। २५)
१८. राजा रूपसिंह जी रईस जिहाजगढ। २५)
१९. पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बच्चूमलगली परांवठा दिल्ली २५)
२०. श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली। २५)
२१. सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर २५)
२२. चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी २५)
२३. चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य २५)
२४. ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा २५)
२५. ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर २५)
२६. लक्ष्मी बाई ठुकराल धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर २५)
२७. बाई बदामो देवी २५)
२८. राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली २५)

२९. राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली २५)
३०. ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर २५)
३१. सरदार भगतसिंह एडव-केट जालंधर २५)
३२. पी० एन० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर २५)
३३. चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी २५)

सहायक

१. चौ० हुकमसिंह जी निखरी ११)
२. बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
३. पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी ११)
४. चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ५)
५. रामप्रसाद जी झाड़सा ५)
६. चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
७. भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
८. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
९. बा० ब्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)
१०. श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ। ५)
११. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर रा जपूताना ५)
१२. श्रीमान पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहाबाद बैंक देहली। ५)
१३. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)
१४. ला० भगवान दास जी, ओडट क्लर्क सेक्रेटरी इजलास खास आफिस संगरूर ५)
१५. महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
१६. मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)
१७. राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना ५)
१८. डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता ५)

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य ॥=)
२. सारसंग्रह	मूल्य =)
३. शब्द संग्रह	मूल्य -)॥
४. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त	मूल्य ।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	मूल्य -)।
६. वेदोपनिषत्	मूल्य ।-)
७. ज्ञानधर्मोपदेश	मूल्य -)॥।
८. भाषा फक्किका प्रकाश	मूल्य ॥)
९. भक्ति योग संग्रह	,, -)॥
१०. शब्द संग्रह गुटका	,, ।)
११. शब्द सदाचार संग्रह	,, -)।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।